श्री वर्धमानाय नम ।

जैन क्रिया-कोष

लेखक :—

स्व० पं० प्रवर दौलतरामजी

जिनवाणी प्रचारक कार्यालय

१६१।१, हरीसन रोड

कलकत्ता

मूल्य ३॥)

श्रीवर्धमानाय नमः

स्वर्गीय पण्डित दौलतरामजी विरचित

जैन-क्रियाकोष

मंगल ।

दोहा—प्रणमि जिनंद मुनिंदको, नमि जिनवर मुखवानि ।
क्रियाकोष भाषा कहूँ, जिन आगम परवानि ॥१॥
मोक्ष न आतम ज्ञान विन, क्रिया ज्ञान विन नाहिं ।
ज्ञान विवेक विना नही, गुण विवेकके माहि ॥२॥
नहि विवेक जिनमत विना, जिनमत जिन विन नाहिं ।
मोक्षमूल निर्मल महा, जिनवर त्रिभुवन माहिं ॥३॥
तातें जिनको वन्दना, हमरी वारम्वार ।
जिनतें आपा पाइये, तीन भुवनमें सार ॥४॥
दीप अढ़ाईके विषैं, आरज क्षेत्र अनूप ।
सौ ऊपर सत्तरि सवैं, वृत्तभूमि शुभरूप ॥५॥
जिनमें उपजे जिनवरा, व्रत विधान निरूप ।
कबहूं इक इक क्षेत्रमें, इक इक ह्वै जिनभूप ॥६॥
तब सत्तरि सौ ऊपरें, उतकृष्टे भुवनेश ।
तिनमें महा विदेहमें, अस्सी दूण असेस ॥७॥

भरतैरावत छेत्र दस, तिनके दस जिनराय।
ए दस अर वे सर्व ही, सौ सत्तरि सुखदाय ॥८॥
घटि हूं तो जिन वीसतें, कटैं न काहू काल।
पंच विदेह विषैं महा, केवल रूप विशाल ॥६॥
चलै धर्म द्वय सासता, यति श्रावक व्रत रूप।
टलै पाप हिंसादिका, उपजें पुरुप अनूप ॥१०॥
कालचक्रकी फिरणि त्रिन, कुलकर तहां न होय।
नाहिं कुलिगम वरति है, ताते रुद्र न जोय॥
तीर्थाधिप चक्री हली, हरि प्रतिहरि उपजंत।
इन्द्रादिक आवें जहां, करें भक्ति भगवंत॥
तीर्थङ्कर अर केवली, गणधर मुनि विहरन्त।
जहां न मिथ्या मारगी, एक धर्म अरहन्त॥
तात मात जिनराजके, अर नारद फुनि काम।
परघट पुरुप पुनीत वहु, शिवगामी गुण धाम॥
ह्वै विदेह मुनिवर जहां, पंच महाव्रत धार।
तातें महा विदेहमें, सत्यारथ सुखकार॥
भरत रावत दस विषैं, कालचक्र है दोय।
अवसर्पिणी उतसर्पिणी, पट २ काला सोय॥
तिनमें चौथे काल ही, उपजें जिन चौबीस।
द्वादश चक्री नव हली, हरि प्रतिहरि अवनीश* ॥

* शरीर रहित। २ स्वामी।

त्रिसठि सलाका पुरुषए, जिन मारग धरधीर।
इनमें तीर्थंकर प्रभू, और भक्ति वर वीर॥
तात मात जिनदेवके, चौवीसा चौवीस।
नौ नारद चौदा मनू, कामदेव चौवीस॥
एकादश रुद्रा महा, इत्यादिक पद धारि।
उपजे चौथे काल ही, ए निश्चै उर धार॥२०॥
या विधि भये अनन्त जिन, ह्वासी देव अनन्त।
सबको मारग एक ही, ज्ञान क्रिया बुधिवन्त॥
सब ही शान्ति प्रदायका, सब ही केवल रूप।
सबही धर्म निरूपका, हिंसा-रहित सरूप॥
सबही आगम भासका, सब अध्यातम मूल।
भुक्ति-मुक्ति दायक सबै, ज्ञायक सूक्ष्म थूल॥
बरननमें आवें नहीं, तीन कालके नाथ।
सर्व क्षेत्रके जिनवरा, नमों जोरि युग हाथ॥
भरतक्षेत्र यह आपनो, जम्बूदीप मझारि।
ताते मैं चौवीसिका, बन्दू श्रुत अनुसारि॥
निर्वाणादि भये प्रभू, निर्वाणी चौवीस।
तेअतीत जिन जानिये, नमों नाय निजशीश॥
जिन भाष्यौद्वै विधि धरम, परम धामको मूल।
यति श्रावकके भेद करि, इक सूक्ष्म इक थूल॥
बहुरि वर्तमाना जिना, रिषभादिक चौवीस।

नमों तिनें निजभाव करि, जिनके रागन रीस ॥
तिनहूँ सोही भाषियौ, द्वै विधि धर्म विलास।
महाव्रत अणुव्रतमय, जीवदया प्रतिपाल ॥
बहुरि अनागत कालमें, ह्वैगे तीरथनाथ।
महापद्म प्रमुख प्रभु, चौबीसा बड़हाथ ॥२०॥
तातें सोही भासि है, जै जोऽनादि प्रवन्ध।
सबको मेरी बन्दना, सबको एक निबन्ध ॥
चौबीसो तीनूं नमूं, नमों तीस चौबीस।
श्रीमंधर आदि प्रभु नमन करों फुनि बीस ॥
पंद्रा कर्म धरा सबै, तिनमें जे जिनराय।
अर सामान्य जु केवली, वर्त्तैं निरमल काय ॥
तिन सबको परनाम करि, प्रणमों सिद्ध अनंत।
आचारिज उपाध्यायकों, विनऊं साधु महन्त ॥
तीन कालके जिनवरा, तीन कालके सिद्ध।
तीन कालके मुनिवरा, बन्दों लोक प्रसिद्ध ॥
पंच परमपद-पदप्रणमि वन्दों केवलवानि।
बन्दों तत्त्वारथ महा, जैनधर्म गुणखानि ॥
सिद्धचक्रकूं बन्दिकै सिद्ध जन्त्रकूं बन्दि।
नमि सिद्धान्त-निबन्धकों, समयसार अभिनन्द ॥
बन्दि समाधि सुतन्त्रकूं, नमि समभाव-सरूप।
नमोकारकूं करि प्रणति, भाषों व्रत अनूप ॥

चउ अनुयोगहिं वंदिके, चउ सरणा ले शुद्ध ।
चउ उत्तम मंगल प्रणमि, कहूं क्रिया अविरुद्ध ॥
वेद-धर्म गुरु प्रणति करि, स्यादवाद अवलोकि ।
क्रियाकोप-भाषा कहूं, कुन्दकुन्द मुनि ढोकि ॥४०॥
अरचों चरचा जैनकी, चरचों चरचा जैन ।
क्रोध लोभ छल मोह मद, त्यागि गहू गुन नैन ॥
कर्तृम और अकर्तृमा, जिन प्रतिमा जिनगेह ।
तिन सबकू परणाम करि, धारूं धर्म सनेह ॥
गाऊं चउविधि दान शुभ, गाऊं दशधा धर्म ।
गाऊं षोड्स भावना, नमि रतनत्रय धर्म ॥
खतऊं सर्व यतीसुरा, विनऊं आर्या सर्व ।
सब श्रावक अर श्राविका, नमन करों तजि गर्व ॥
करों वीनती मना धर, समदृष्टिनसों एह ।
अपनोंसों धीरज मुझे, देहु, धर्ममें लेह ॥
लोक शिखरपर थान जो, मुक्ति क्षेत्र सुखधाम ।
जहां सिद्ध शुद्धातमा, तिष्टें केवलराम ॥
नमों नमों ता क्षेत्रकों, जहां न कोई उपाधि ।
आदि व्याधि असमाधि नहिं विरतै परम समाधि ॥
प्रणमि ज्ञान कैवल्यकों, केवल दर्शन ध्यान ।
यथाख्यात चारित्रकूं, वन्दों सीस नवाय ॥
प्रणमि संयोग सथानको, नमि अजोग गुणथान ।

क्षायक सम्यक वंदिकैं, बरणों व्रत विधान ॥
वन्दों चउ आराधना, वन्दों उपशम भाव।
जाकरि क्षायक भाव ह्वै, होय जीव जिनराय ॥५०॥
मूलोत्तर गुण साधुके, कहै जिनकरि जनसिद्ध।
तिनकूं वन्दि कहूं क्रिया, त्रेपन परम प्रसिद्ध ॥
जहां मुनि निज ध्यान करि, पावैं केवलज्ञान।
वन्दो ठौर प्रशस्त जो, तीरथ महा निधान ॥
जा थानकसों केवली, पहुंचे पुर निर्वाण।
वन्दों थान पुनीत जो, जा सम थानन आन ॥
तीर्थङ्कर भगवानके, वन्दों पंच कल्याण।
और केवलीको नमों, केवल अर निर्वाण ॥
नमों उभैविधि धर्मकों, मुनि श्रावक निरधार।
धर्म मुनिनकों मोक्ष दे, काटै कर्म अपार ॥
तातैं मुनि मत अति प्रबल, वार वार थुति योग।
धन्य धन्य मुनिराज ते, तजें समस्त अजोग ॥
पर परणति जे परिहरें, रमें ध्यानमें धीर।
ते यमकूं निज दास करि, हरो महा भव पीर ॥
मुनिकी क्रिया विलोकिकै, हमपै बरनि न जाय।
लौकिक क्रिया गृहस्थकी, बरनूं मुनि गुण ध्याय ॥
यतिव्रत ज्ञान बिना नहीं, श्रावक ज्ञान बिना न।
बुद्धिवंत नर ज्ञान बिन, खोवें बादि दितान ॥

मोक्षमारगी मुनिवरा, जिनकी सेव करेय।
सो श्रावक धनि धन्य है, जिनमारग चित देय ॥६०॥
जिन मन्दिर जो शुभ रचे, अरचै जिनवर देव।
जिनपूजा नितप्रति करै, करे साधुकी सेव ॥
करे प्रतिष्ठा परम जो, जात्रा करे सुजान।
जिम शासनके ग्रन्थ शुभ, लिखवावै मतिवान ॥
चउविधि संघतणो सदा, सेवा धारे वीर।
पर उपगारी सर्वकी, पीड़ा हरे जु वीर ॥
अपनी शक्ति प्रमाण जो, धारै तप अर दान।
जीवमात्रको मित्र जो, शीलवंत गुणवान ॥
भाव शुद्ध जाके सदा, नहिं प्रपंचको लेस।
परधन पाहन सम गिनै, तृष्णा तजी विशेष ॥
तातैं गृहपति प्रवल, ताकी क्रिया अनेक।
जिनमें त्रेपन मुख्य हैं, तिनमें मुख्य विवेक ॥
नमस्कार गुरुदेवको, जे सब रीति कहेय।
जिनवानी हिरदै धरी, ज्ञानवन्त व्रत लेय ॥
क्रिया कांडकों करि प्रणति, भाषों किरिया कोष।
जिनशासन अनुसार शुभ, दयारूप निरदोष ॥
प्रथमहिं त्रेपनजे क्रिया, तिनके वरनों नाम।
ज्ञान-विराग-सरूपजे, भविजनकूं विश्राम ॥

---*---

त्रेपन क्रिया।

गाथा—गुण-वय-सम-पड़िमा, दाणं जलगालणं च अणत्थामियं।
दंसणणाण चरित्तंकिरिया तव्रण्ण सावया भणिया॥

चौपाई।

गुण कहिये अटमूल जु गुणा, वय कहिये व्रत द्वादस गुणा।
तव कहिये तप बारह भेद, सम कहिये समदृष्टि अभेद॥७०॥
पड़िमा नाम प्रतिज्ञा सही, ते एकादस भेद जु लही।
दाणं कहिये दान जु चार, अर जलगालण रीति विचार॥
निसिको खानपान नहिं भला, अन्न औषधी दूध न जला।
रात्रि विषैं कछु लेवौ नाहिं, अति हिंसा निशिभोजन माहिं॥
कह्यो 'अणत्थमिय' शब्द जु अर्थ, निशिभोजन सम नाहिं अनर्थ।
दंसण णाण चरित्र जू तीन, ए त्रेपन किरिया गिणि लीन॥
प्रथमहिं आठ मूलगुण कहो, गुण परसाद विषाद न कहो।
मद्य मांस मधु मोटे पाप, इन करि पावे अतुलित पाप॥
वर पीपर पाकर नहिं लीन, ऊमर और कठूमर हीन।
तीन पांच ए आठोंवस्तु, इनको त्यागे सकल परशस्त॥
मन-वच-काय तजौ नरनारि, कृत-कारित अनुमोद विचारी।
जिनमें इनको दोष जु लगै, तिन वस्तुनतें बुधजन भगे॥
अमल जाति सवही नहिं भक्ष, लगै भक्षको दोष प्रत्यक्ष।
रस चलतादिक सड़िय जु वस्तु, ते सब मदिरा तुल्यउ वस्तु॥
जा खाये मन ठीक न रहै, सो सब मदिरा दूषण लहै।

अर्क अनेक भांतिके जेह, खइवेमें आवत है तेह ॥
आली १ वस्तु रहै दिन घना, तामें दोष लगे मदतना २ ।
अब सुनि आमिष ३ दोष जु भया, चर्मादिक घृत तेल न लया।
हींग कदापि न खावन बुधा, वींधौ सीधौ भखिवौ भुषा ॥
चूम चालियौ चलनी चाम, नीच जाति पीस्यौहुन काम ॥८०॥
फूली आयौ धान अखान, फूल्यौ साग तजौ मतिवान ।
कंद अथाणा माखन त्याग, हाट मिठाई तज बड़ भाग ॥
निशि भोजन अणछाण्यूं नीर, आमिष तुल्य गिनें बरबीर ।
निशि पीस्यौ निसि राध्यौ होय, हाड़ चामको परस्यो जोय ॥
मांस अहारीके घर तनों, सो सब मांस समानहिं गिनो ।
विकलत्रय अर तिर नर जेह, तिनको मांस रुधिरमय जेह ॥
तजौ सबै आमिष अघखानि, या सम पाप न और प्रमानि ।
त्यागौ सहत जु मदिरा शमा, मधू दोउको नाम निरभ्रमा ॥
अर जिन वस्तुनिमें मधूदोष, सो सब तजहु पापगण पोष ।
काकिव-और मुरब्बा आदि, इनहिं खाहिं तिनको व्रतबादि ॥
मधु मदिरा पल जे नर गहे, ते शुभगतितें दूरहिं रहैं ।
नर्क निगोद माहिं दुख सहैं, अतुल अपार त्रासना ३ लहैं ॥
तातैं तीन मकार धिकार, मद्य मांस मधु आप अपार ।
ये तीनों औ पञ्च कुफला, तीन पांच ये आठों मला ॥
इत आठोंमें अगणित त्रसा, उपजै मरण करैं परबसा ।
जीव अनन्ता वहुत निगोद, तातें कृत कारित अनुमोद ॥

इनको त्याग किये वसु मूल, गुणा होंहिं अघतें प्रतिकूल।
पांच उदम्बर तीन मकार, इनसें पाप न और प्रकार॥
बार बार इनकों धिकार, जो त्यागै सो धन्य विचार।
इन आठनसें चौदा और, भखै सु पावै अति दुख-ठौर॥६०॥
बहुत अभक्षन में बाईस, मुख्य कहे त्यागैं व्रतईस।
ओला नाम बड़ा जु बखानि, जीवरासि भरिया दुखखानि॥
अणछाण्यां जलके बंधाण, दोष करै जैसे संधान॥
भखै पाप लागे अधिकाय, तातैं त्याग करौ सुखदाय॥
घोल बड़ामें दूषण बड़ा, खाहिं तिके जाणे अति जड़ा।
दही महीमें बिदल जु वस्तु, खाये सुकृत जाय समस्त॥
तुरत पंचेन्द्री उपजे तहां, विदल दही मुखमें ले जहां।
अन्न मसूर मूंग चणकादि, मोठ उड़द मट्टर तूरादि॥
अर मेवा पिस्ताजु विदाम, चारौली आदिक अति नाम।
जिन वस्तुनिकी ह्वै द्वै दाल, सोसो सब दधि भेला टालि॥
जानि निसाचर जे निशि अरैं, निसभोजन करि भव दुख करैं।
तातें निसिभोजन तजि भया, जो चाहैं जिनमारग लया॥
दोय महूरत दिन जब रहै, तबतें चउविहार बुध गहै।
जौलौं जुगल महूरत दिना, चढ़ि है तौलौं अनसन गिना॥
रात-बसौं अर रातहिं कियो, रात-पिस्यौं कबहूं नहिं लियो।
जहां होय अंधेरो बीर, तहां दिवसहू असन न बीर॥
दृष्टि देखि भोजन करि शुद्ध, दृष्टि देखि पग धरहु प्रबुद्ध।

बहुबीजा जामें कण घणा, ते फल कुफल जिनेसुर भणा ॥
प्रगट तिजारा आदिक जेह, बहुबीजा त्यागौ सब तेह ।
बेंगण जाति सकल अघखानि, त्याग करौ जिन आज्ञा मानि ॥१००
संधाणा दोषीक विसेस, सो भव्या छांड़ौ जु असेस ।
ताके भेद सुनों मनलाय, सुनि यामें उपजै अधिकाय ॥
उत्थाणा संधाण मथाण, तीन जाति इनकी जुबखानि ।
राई लूणी कलूंजी आदि, अम्बादिकमें डारहिं बादि ॥
नाखि तेलमें करहिं अथाण, या सम दोप न सूत्र प्रमाण ।
त्रसजीवा तामें उपजन्त, मखियां आमिष-दोष लहन्त ॥
नीबू आम्रादिक जे फला, लूण माहिं डारै नहिं भला ।
याको नाम होय संधाण, त्यागं पण्डित पुरुष सुजाण ॥
अथवा चलित रसा सब वस्त, संधाणा जाणों अप्रशस्त ।
बहुरि जलेबी आदि जोहि, डोहा राब मथाणा होय ॥
लूण छाछि माहीं फल डारि, केर्यादिक जे खांहिं संवारि ।
तेहि बिगारें जन्म सुकीय, जैसे पापी मदिरा पीय ॥
अब सुनि चून तनी मरजाद, भाषै श्रीगुरु जो अविवाद ।
शीलकालमें सातहि दिना, ग्रीषममें दिन पांचहि गिना ॥
बरषारितु माहीं दिन तीन, आगे संधाणा गणलीन ।
मरजादा बीतें पकवान, सो नहि भक्ष कहें भगवान ॥
ताहि भखें जु असूत्री लोक, पावें दुरगतिमें दुख-शोक ।
मर्यादाकी विधि सुनि धीर, जो भाषी गौतम प्रति वीर ॥

जामें अन्न जलादिक नाहिं, कछु सरदा जामाहीं नाहि।
वूरा और वतासा आदि, वहुरि गिंदोडादिक जु अनादि ॥११०॥
ताकी मर्यादा दिन तीस, शीतकालमें भाषी ईश।
ग्रीषम पंद्रा वर्षा आठ, यह धारौ जिनवाणी पाठ ॥
अर जो अन्नतणों पकवान, जलको लेश जु माहै जान।
आठ पहर मरजादा जास, भाषें श्रीगुरु धर्म प्रकाश ॥
जल-वरजित जो चूनहिं तनों, घृत-मीठो मिलिकें जो वनों।
ताकी चून समानहि जानि, मरजादा जिन आज्ञा मानि ॥
भुजिहा वड़ा कचौरी पुवा, मालपुवा घृत तेलहिं हुवा।
इत्यादिक है अवरहु जेह, लुचई सीरा पूरी एह ॥
ते सव गिना रसोई समा, यह उपदेश कहे पति रमा।
दारि भात कढ़ही तरकारि, खिचड़ी आदि समस्त विचारि ॥
दोय पहर इनकी मरजाद, आगें श्रीगुरु कहें अखाद।
केई नर संधारक त्यागि, ल्यूंजी खांय सवादहि लागि ॥
केरी नींबू आदि उकालि, नाना विधि सामग्री घालि।
सरस्यूं केरी तेल तपाय, तामें तलें सकल समुदाय ॥
जिह्वालंपट वहु दिन राख, खांय तिके मतिमन्द जु भाख।
तरकारी सम ल्यूंजी एह, आगे संधाणा समुजेह ॥
अणजाण्यूं फल त्यागहु मित्र ! अणछाण्यो जल ज्यों अपवित्र।
त्यागौ कंदमूल वुधिवंत, कन्दमूलमें जीव अनन्त ॥
गारि न कवहु भखहु गुणवन्त, गारी कवहु न काढ़उ संत।

री गारिमें जीव असंख, निन्दं साधु अशंक अकंक ॥१२०॥
ा खाये छूटें निज प्राण, सो विषजाति अभक्ष प्रवान।
ाफू और महोरा आदि, तजौ सकल सुनि सूत्र अनादि ॥
ाचौ माखण अति हि सदोष, भखिया करै सबै सुभ सोख।
हले आमिष दूषण माहिं, फुनि फुनि निन्द्यौ ससै नाहिं ॥
फल अति तुच्छ खाहु मति वीर, निन्दे महावीर जगधीर।
ालौ राति जमावै कोय, ताहि भखत दुरगति फल होय ॥
नेज सवाद तजि हूवै विपरीत, सो रसचलित तजा भवभीत।
ागें मदिरा दूषण महै, निंद्यौ ताहि सुबुध नहिं गहै ॥
ए बाईस अभख तजि सखा, जो चाहौ अनुभव रस चखा।
अवर अनेक दोषके भरे, तजो अभख भव्यनि परिहरे ॥
फूल जाति सब ही दोषीक, जीव अनन्त फरे तहकीक।
कबहु न इनकों सपरस करौ, इह जिन आज्ञा हिरदै धरौ ॥
खावौ और सू घिवौ सदा इनकूं तजहु न ढांकहु कदा।
शाक-पत्र सब निंद बखानि, त्याग करौ जिन आज्ञा मानि॥
नेम धर्म व्रत राख्यौ चहै, तौ इन सबकूं कबहु न गहै।
झाड़ तनें बड़ बोरि जु तनें, तजो बौर त्रस जीव जु घनें ॥
पेठा और कोहला तजौ, तजितरबूज जिनेसुर भजौ।
जांबू और करोंदा जेहु, दूध झरै त्यागौ सहु तेह ॥
कन्द शाकदल फूल जु त्यागि, साधारण फलतें दुर भागि।
जो प्रत्येकहु छांड़ै वीर, ता सम और न कोई धीर ॥१३०॥

जो प्रत्येक न त्यागे जाय, तौ परमाण करे सुखदाय।
तेहु अलपहो कबहुक खाय, नहिं तोड़े न तुड़ावन जाय॥
ताजा ले बासी नहिं भखै, रसचलतादिक कबहु न चखै।
हरितकायसौं त्यागै प्रीति, सो जानैं जिनमारग-रीति॥
जे अनन्तकाया सुखदाय, सब साधारण त्यागौ राय।
तजि केदार तू बड़ी सदा, खाहु मनालीढिस तुम कदा॥
कचनारादिक डौंडी तजौ, तजि अणफोड्यों फल जिन भजौ।
पहलौं विदलतनूं अति दोष,—भाख्यौ भेद सुनहु तजि राय॥
अन्न मसूर मूंग चणकादि, तिनकी दालि जु होय अनादि।
अर मेवा पिस्ता जु बिदाम, चारोली आदिक अतिनाम॥
जिन जिन वस्तुनकी है दालि, सो सो सब दधि भेला टालि।
अर जो दधि भेलो मिष्टान, तुरतहि खावौ सूत्र प्रमान॥
अन्तमहूरत पीछैं जीव,—उपजैं इह गावैं जगपीव।
तातैं मीठाजुत जो दही, अन्तमहूरत पहले गही॥
दधि-गुड़ खावौ कबहु न जोग, बरज श्रीगुरु वस्तु अजोग।
फुनि सुनहु! मित्र इक बात, राईलूण मिलैं उतपात॥
तातैं दही महीमें करै, तजौ रायता कांजी वरै।
घी ताजा गहिवौ भविलोय, शूद्रनको घृत जोगि न होय॥
स्वादचलित जो खावै घीव, सो कहिये अविवेकी जीव।
विरत सोधिको लेवौ अल्प, भजिवौ जिनवर त्यागि विकल्प॥१४०
घृत हू छाड़े तौ अति तपा, नीरस तप धरि श्रीजिन जपा।

सिंधवलोंन व्रतिनिको लेन, कतृम लोन सबै तजिदेन ॥
जो सिंधवहू त्यागै भया, महा तपस्वी श्रुतमें लया ।
अब तुम गोरसकी विधि सुनो, जिनवरकी आज्ञा उरमुनो ॥
दोहत जब महिषी अर गाय, तबतें ईह मरजाद गहाय ।
काचौ दूध न राखै सुधी, द्वै घटिका राखै तौ कुधी ॥
काचौ दूध न लेवौ वीर, अणछाण्यं पय तजिवो धीर ।
अन्तर एक महूरत वसा, उपजैं जीव असंखित त्रसा ॥
जाको पय ह्वै कैसे जीव, प्रगटैं इह भाषें जगपीव ।
पंचेन्द्री सन्मूर्छन प्राणि, भैया तू जिनवचन प्रवाणि ॥
इह तो दूध तणीविधि कही, अब सुनि दहो महाची सही ।
जामण दायो ह्वै जिंह दिना, ताके दूजो दिन शुभ गिना ॥
पीछे दधि खावो नहिं जोगि, इह भाषें जिनराज अरागि ।
दधिको मथियौ पानी डारि, ताको नाम जु छाछि विचारि ॥
ताही दिवस होय सो भक्ष, यह जिन आज्ञा है परतक्ष ।
मथता होजा माहीं तोय, वहुरयौ वारि न डारो होय ॥
मथिया पाछे काचौ वारि, नाख्यौ सो लेचौ जु विचारि ।
जेतौ काचा जलको काल, तेतौ ही ताको जु विचारि ।
छाण्यू जलसो काचौ रहै, एक महूरत जिनवर कहैं ।
आगें त्रसजीवा उपजंत अणछान्यां को दोष लगंत ॥१५०॥
तिक्त कषाय मिल्यौ जो नीर, सो प्राशुक भाख्यो जिन वीर ।
दोय पहर पहिली हो गहौ, यह जिन आज्ञा हिरदै गहो ।

तातौ जलजो भात उकाल, आठ पहर मरजादा काल।
आगै सनमूर्छन उपजाहिं, पीवत धर्मध्यान सब जाहिं॥
दोहा—अघ-तरवरको मूल इह, मोह मिथ्यात जु होय।
राग दोष कामादिका, ए सकंध बहु जाय॥
अशुभ क्रिया शाखा बनी पल्लव चंचल भाव।
पत्र असंयम अव्रता, छाया नाहिं लखाव॥
इह भव दुख भाखै पहुप, फल निगोद नरकादि।
इह अघ-तरुको रूप है भववन मांहि अनादि॥
चौपाई—क्रिया कुठार गहै कर कोय, अघतर वरक काटै सोय।
जे वेंच दधि और जु मठा, उदर भरणके कारण शठा॥
तिनकैं माल लेय जो खाहिं, ते नर अपनों जन्म नसाहिं।
तातैं मोलतनों दधि तजौ, यह गुरु आज्ञा हिरदै मजौ॥
दधी जमावै जा विधि व्रती, सो विधि धारहु भाषहिं जती।
दूध दुहाकर ल्यावै जबै, ततछिन अगनि चढ़ावै तबै॥
रूपौ गरम करे पयमांहिं, जामण देइ जु संसै नाहिं।
जमे दही या विधिकर जोहु, बांधे कपरा माहीं सोहु॥
बूंद रहे नहिं जलकी एक, तबहिं सुकाय धरे सुविवेक।
दही बड़ी इह भाषी सही, गृही जमावै तासों दही॥१६०
अथवा दधिमें रूई भेय, कपरा भेय सुकाय धरेय।
राखै इक द्वै दिन ही जाहि, बहुत दिना राखै नहि ताय॥
जलमें घोलिर जामण देय, दधि ले तौ या विधिकरि लेय।

और भांति लेवौ नहि जोगि, भाखें जिनवर देव अरोगि ॥
शीतकालकी इह विधि कही, उष्णरु बरषा राखें नहीं ।
जाहि सर्वथा छाड़ैं दधी, तासम और न कोई सुधी ॥
सूद्रनतें पात्रनिको दुग्ध, दधि-घृत छाछि भखें ते मुग्ध ।
उत्तम कुल हू जे मतिहीन, क्रियाहीन जु कुविसन अधीन ॥
तिनके घरको कछहु न जोगि, तिनको किरिया बहुत अजोग ।
दूध ऊंटणी भेडिन तनौं, निंद्यौ जिनमत माहीं घनौं ॥
गो महिषी विन और न भया, कबहु न लेनौं नाहीं पया ।
महिषी दूध प्रमाद करेय, ताते गायनिको पय लेय ॥
नोरसव्रत धर दूधहि तजै, तातें सकल दोष ही भजै ।
हाट बिकंते चून रु दालि, बुधजन इनको खावौ टालि ॥
बींधौ घोटैं पीसै दलै, जीव दया तब कैसे पलै ।
चूलो संखतणों कसतूरि, इनकों निंद कहें जिनसूरि ॥

दोहा—चरमसपरसी वस्तुको, खातें दोष जु होय ।
ताको संक्षेपहिं कथन, कहौं सुनौं भविलोय ॥
मृक पशूके चर्मकों, चीरै जो चण्डार ।
तो चण्डालहि परसिकैं, छोति गिनें ससार ॥१७०॥
तौ कैसे पावन भयौ, मिल्यौ चर्म सौं जोहि ।
आमिष तुल्य प्रभू कहें, याहि तजौ बुध सोहि ॥
उपजैं जीव अपार सुनि जिनवानी उर धारि ।
जा पसुको है चर्म जो, तैसे ही निरधारि ॥
सन्मूर्छन उपजैं जिया, तातैं जल घृत तेल ।

चर्म सपरसे त्यागिवे, भाषें साधु अचेल ॥
जैसे सूरज कांचके, रूई बीचि धरेय ।
प्रगटै अगनि तहां सही, रूई भस्म करेय ॥
तैंसे रस और चर्मके, जोगै जिय उपजन्त ।
खानेवारेके सकल, धर्मव्रत लुपिजन्त ॥
जीमत भोजनके विषैं, मुत्रौ जिनावर देखि ।
तजैं नहीं जे असनकों, ते दुरबुद्धि विशेखि ॥
जे गंवारपाठातनी, फलो खांय मतिहीन ।
तिनके घट नहिं समुझि है, यह भाषैं परवीन ॥

रसोई, परंडा, चक्की आदि क्रियाओंका वर्णन

चौपाई—जा घर माहि रसोई होय, धारे चंदवा उत्तम सोय ।
बहुरि परंडा ऊपर ताणि, उखली चाकी आदिक जाणि ॥
फटकै नाज बीणिये जहां, चून चालिये भैय्या तहां ।
अर जिह ठौर जीमिये धीर, पुनि सोवेकी ठौहर वीर ॥
तथा जहां सामायिक करै, अथवा श्रीजिनपूजा धरै ।
इतने थानक चंदवा होय, दीखै श्रावकको घर सोय ॥
चाकी अर उखली परमाण, ढकणा दीजै परम सुजाण ।
श्वान विलाव न चाटै ताहि, तब श्रावकको धर्म रहाहि ॥
मूसल धोय जतनसों धरै, निशि घोटन पीसन नहि करै ।
छाज तराजू अर चालणी, चर्मतणी भविजन टालणी ॥
निशिकों पीसै घोटै दलैं, जीवदया कबहूं नहिं पलै ।

जाकी गन्धि नून रहाय, चींटी आदि लगैं तसु आय ॥
निशिको पीसन कूटन न करै, तातैं निशिपीसन परिहरै ।
तथा रातिको औंट्यौ नाज, खावौ महापापको साज ॥
अंकूरे निकसैं ता माहिं, जीव अनन्ता संशय नाहिं ।
तातैं औंट्यौ नाज अकाज, तजौ मित्र अपने शुभ काज ॥
घुन्यौ सड्यौ गांठमां जो धान, फूल्यौ आयौ होय न खान ।
स्वादचलित खावौ नहिं वीर, रहिवौ अति विवेकजु धीर ॥
नहिं छोवैं गोबर गोमूत, मल-मूत्रादिक महा अपूत ।
छाणा ईंधन काज अजोगि, लकड़ीहू बींधी नहिं जोग ॥
जेती जाति मुरब्बा होय, लेणा एक दिवस हो सोय ।
पीछे लागै मधुको दोष, तामें और न अघको पोष ॥
आथाणाको नाम अचार, भाखैं अविवेकी अविचार ।
या सम अणाचार नहिं कोय, याको त्याग करैं बुध सोय ।
राह चल्यौ भोजन मति खाहु, उत्तम कुलको धर्म रखाहु ॥
निकट रसोई भोजन करौ, अणाचार सब ही परिहरौ ॥
करो रसोई भूमि निहारि, जीव-जन्तुकी बाधा टारि ॥

बेसरी छन्द ।

होय खोदि मति करौ रसोई, तहां जीवकी हिंसा होई ।
मलिन वस्तु अवलोकन होवै, सो थानक तजि औरहिं जोवै ।
नरम पूंजणीसौं प्रतिलेखै, करै रसोई चर्म न देखै ।
माटीके बासण इक बारा, दूजी बिरियां नहीं अचारा ॥

जो दूजे दिन राखै कोई, सो नर शूद्रनि सादृश होई।
मिटै न सरदी कटै न काई, मिट्टीके वासणकी भाई॥
उपजें जीव असंख्य जु तामें, वासी भाजन दूषण जामें।
दया न किरिया उत्तमताई, माटीके वासणमें भाई॥
तातें भले धातुके वासन, इह आज्ञा गावैं जिनशासन।
धातु-पात्र ही नीका मंज, सोई असन अक्रिया भंज॥
रहै असनको लेस जु कोई, सो वासन मांज्यौ नहि होई।
दया क्रियाको नासजु तामें, अन्नजोग उपजें जिय जामे॥
मांजि धोय अर पूंछ जु राछा, राखै उज्वल निर्मल आछा।
दया सहित करणी सुखदाई, करुणा विन करणी दुखदाई॥ २०
जीवनकूं सन्ताप न देवें, तव आचार तणी विधि लेवें।
विन जिनधर्मी उत्तम वसा, देइन लेयसु राछनि शंसा॥
श्रावक कुल किरिया करि युक्ता, तिनके करको भाजन युक्ता।
अथवा अपने करको कीयो, आरम्भी श्रावकने लीयो॥
अन्यमती अथवा कुलहीना, तिनके करको कबहु न लीना।
अन्य जाति जो भींटै कोई, तौ भाजन तजवो है सोई॥
नीला हरी तजें जो सारी, तासम और नहीं आचारी।
जो न सर्वथा छाड़ी जाई, तौ प्रत्येक फला अलपाई॥
हरी सुकावौ योग्य न भाई, जामें दोष लगै अधिकाई।
सूके अन्न औषधी लेवा, भाजी सूकी सब तजि देवा॥
पत्र-फूल-कन्दादि भखें जे, साधारण फल मूढ़ चखें जे।
ते नहि जानों जैनी भाई, जीभलंपटी दुरगति जाई॥

पत्र-फल-कन्दादि सबै ही, साधारण फल सर्व तजि ही।
अर तुम सुनहु विवेकी भैया, मेलै भोजन कबहु न लैया॥
मात तात सुत बांधव मित्रा, मेलै भोजन अति अपवित्रा।
महा दोष लागै या माहीं, आमिषको सो संशय नाहीं॥
अपने भोजनके जे पात्रा, काहूकूं नहिं देय सुपात्रा।
सो मेले जीमें कहो कैसे, भाषैं श्रीजिन नायक ऐसे॥
साहि मराय न भोजन भाई, जब श्रावककी व्रत रहाई।
अन्तिज नीचनके घर माहीं, कबहुं रसोई करणी नाहीं॥३०॥
मांस त्यागि व्रत जो दृढ धारै, नीचनको संसर्ग न कारै।
उत्तम कुल है परमत धारी, तिनहूके भोजन नहिं कारी॥
जैन धर्म जिनके घट नाहीं, आनदेव पूजा घर माहीं।
तिनका छूयो अथवा करको, कबहू न खावै तिनके घरको॥
कुल किरियाकरि आप समाना, अथवा आपथकी अधिकाना।
तिनको छूयो अथवा करको, भोजन पावन तिनके घरको॥
अर जे छाणि न जाणे पाणी, अन्न छाणकी रीतिनजाणी।
भक्षाभक्ष भेद नहि जानैं, कुगुरु कुदेव मिथ्यामत मानैं॥
तिनतैं कर्मा पांति जु मित्रा, तिनका छूयो है अपवित्रा।
चर्म रोम मल हाथीदंता, जेहि कचकड़ा विकल कहंता॥
तिनतैं नहि भोजन संबंधा, यह किरियाको कह्यो प्रबंधा।
जंगम जीवनके जु शरीरा, अस्थि चर्म रोमादिक वीरा॥
सब अपवित्रता जानि मलीना, थावर दल भोजनमें लीना।
रोमादिकको सपरस होवै, सो भोजन श्रावक नहि जोवै॥

नीला वस्त्र न भीटैं सोई, नाहि रेशमी वस्त्रहु कोई।
विना धोया हू कपरा नाहीं, इह आचार जैनमत माहीं ॥
दया लिया है किरिया धारी, भोजन करैं सोधि आचारी।
पांच ठांवमूं भोजन नाहीं, धाति दुपट्टा विमल धराहीं ॥
विन उज्जलता भई रसोई, त्याग करै ताकूं विधि जोई।
पंचेन्द्री पशुहूको छूयौ, भोजन तजै अविधितैं हूयौ ॥
सौधतनी सब वस्तु जुलेई, वस्तु असोधी त्यागै तेई।
अन्तराय जो परैं कदापी, तजै रसोई जीव निरापी ॥४०॥
दयाक्रिया विन श्रावक कैसें, बुद्धि पराक्रम विन नृप जैसें।
मांस रुधिरमल अस्थिजु चामा, तथा मृतक प्राणी लखिरामा ॥
अर जो वस्तु तजी है भाई, सो कबहू जो थाल धराई।
तो उठि बैठे होउ पवित्रा, यह आज्ञा गावै जगमित्रा ॥
दान विना जीमौ मति वीरा, इह आज्ञा धारौ उर धीरा।
विना दान भोजन अपवित्रा, शक्तिप्रमाण दान दो चित्रा ॥
मुनी अर्जिका श्रावक कोई, कै सुश्राविका उत्तम होई।
अथवा अव्रत सम्यकदृष्टी, जिह उर अमृतधारा वृष्टी ॥
इनकूं महाभक्ति करि देहो, तिनके गुण हिरदामें लेहो।
अथवा दुखित भुखित नरनारी, पशु-पंखी दुखिया संसारी ॥
अन्न वस्त्र जल सबकों देना, नर भव पायेका फल लेना।
तिर्यंचनिकूं तृण हू देना, दान तणें गुण उरमें लेना ॥
भोजनकरत ओंठि मति छांड़ौ, ओंठि खाय देही मतिभांडौ।
काहूकूं उच्छिष्ट न देनी, यही बात हिरदै धरि लेनी ॥

अन्तराय जो परै कदापी, अथवा छीवें खलजल पापी।
तब उच्छिष्ट तजन नहिं दोषा, इहभाषैं बुधजनव्रत पोषा॥
घृत दधि दूध मिठाई मेवा, जोहि रसोई माहिं जु लेवा।
सो सब तुल्य रसोई जानों, यह गुरु आज्ञा हिरदै मानों ॥५०॥
जहां चापरै अन्न रसोई, तातें न्यारे राखै जोई।
जेतौ चहिये तेतौ ल्यावे, आटो सो बर्तनमें आवे॥
पाकावस्तुरु भोजन भाई, एक भये बाहिर नहिं जाई।
जल अरअन्न तणों पकवाना, सो भोजनही सादृश जाना॥
असन रसोई बाहर जावे, सो वढ़बापा नाम कहावै।
मोन विना भोजन बरज्याहै, मौन सात श्रुत माहिं कह्यो है॥
भोजन भजन स्नान करंता, मैथुन वमन मलादि करंता।
मूत्र करन्ता मौन जु होई, इह आज्ञा धारे बुध सोई॥
अन्तराय अर मौन जु सप्ता, पावें श्रावक पाप अलिप्ता।
अब जलकी किरिया सुनि धर्मी, जे नहिं धारें तेहि अधर्मी॥
नदीतीर जो होय मसाणा, सो तजि घाटजु निन्द्य बखाणा।
और घाटको पाणी आणों, इह जिन आज्ञा हिरदे जाणों॥
लोक भरन जे निजरया आवैं, तिनके ऊपरलो जल ल्यावै।
सरवर मांहि गांवको पानी, आवै सो सरवर तजि जानो॥
गांवथकी जो दूरि तलावा, ताको जब ल्यावौ सुभ भावा।
तजे अपावन निंदक नीरा, अब वापीकी विधि सुनि वीरा॥
जा माहीं न्हावै नरनारी, कपरा धावहिं दांत निकारी।
ता वापीकौ जलमति आनों, तहां न निर्मलताई जानों॥

कूपतणी विधि सुनहु प्रवीना, जहा भरैं पानी कुल हीना।
तहा जाहि मति भरवा भाई, तबै ऊंचको धर्म रहाई ॥६०॥
उत्तम नीच यहै मरजादा, यामें है कछूहू न विवादा।
यवन अन्तिजा सबसे हीना, इनको कूप सदा तजिदीना ॥
अब तुम बात सुनो इक और, शंका छांड़ि बखानौ और।
धर्मरहितके पानी घरको, त्यागौ वारि अधर्मी नरको ॥
विन साधर्मी उत्तम वंसा, पर घरको छाड़ौ जल अंसा ॥
दोहा—जलके भाजन धातुके, जो होवें घर माहिं।
पूंछ मांजि नित धोयवा, यामें संसै नाहि ॥
अर जे वासण गारके, गागर घट मटकादि।
तेहि अल्पदिन राखियौ, इह आज्ञाजु अनादि ॥
राति सुकाया वा धरा, माटी बासण वीर।
तिनमें प्रातहि छाणिगौ, आछौ विधिसों नीर ॥
जौ नहिं राखै गारके जलभाजन बुधिवान।
राखो वासण धातु ही, सो अति ही शुचिवान ॥

॥ चौपाई ॥

इह तौ जलकी क्रिया वताई, अब सुनि जलगालन विधिभाई ॥
रंगे वस्त्र नहिं छानों नीरा, पहरे वस्त्र न गालौ वीरा ॥
नाहिं पातरे कपडे गालौ, गाढ़े वस्त्र छांड़ि अघ टालौ।
रेजा दृढ़ आंगुल छत्तीसा,—लंबा, अर चौरा चौवीसा ॥
ताको दो पुड़ताकरि छानों, यही नांतणाकी विधिजानों।
जल छाणत इक बूंदहु धरती,-मति डारहु भाषें महावरती ॥

एक बूंदमें अगणित प्राणी, इह आज्ञा गावै जिनवाणी।
गलना चिउंटो धरि मति दाबौ, जीयदयाको जतनधरावौ ॥७०
छाणे पाणी बहुते भाई, जल गलणा धोवै चितलाई।
जीवाणीको जतन करौ तुम, सावधान ह्वै विनवें क्या हम ॥
राखहु जलकी किरिया शुद्धा, तबश्रावक व्रत लहौ प्रबुद्धा।
जा निवांणकौ ल्यावौ वारी, ताही ठौर जिवाणी डारी ॥
नदी तलाव बावड़ी माहीं, जलमें जल डारौ सक नाहीं।
कूप माहिं नाखौ जु जिवाणी, तौ इति बात हिये परवाणी ॥
ऊपरसू डारौ मति भाई, दयाधर्म धारौ अधिकाई।
भवरकलीको डोल मङ्गावौ, ऊपर नीचे डौरि लगावौ ॥
द्वै गुण डोल जतन करि वीरा, जीवाणी पधरावौ धीरा।
छाण्यां जलको इह निरधारा, थावरकाय कहें गणधारा ॥
द्वै घटिका बीतै जो जाकों, अणछाण्यांको दोप जु ताकों।
तिक्त कषाय मेलि किय फासू, ताहि अचित्त कहैं श्रुतभासू ॥
पहर दोय बीतै जो भाई, अगणित त्रस जीवा उपजाई।
ड्योढ़ तथा पौणा दो पहरा, आगैं मति वरतौ बुधि-गहरा ॥
भात उकाल उष्णजल जो है, सात पहर ही लीनूं सो है।
बीतें वसू जाम जल उष्णा, त्रस भरिया इह कहै जु विष्णा ॥
विष्णु कहावें जिनवर स्वामी, सर्व बातके अन्तर यामी।
या विधि पाणी दिवसें पीवौ, निसिकूं जल छाडौ भविजीवौ ॥
असन पान अर खादिम स्वादी, निस त्यागे विन व्रत सब बादी।
दया विना नहि व्रत जु कोई, निस भोजनमें दया न होई ॥८०

छाण्यूंजाय न निसकों नारा, वीण्यूंजाय न धांनहु वीरा।
छाण बीण बिन हिंसा होवै, हिंसातैं नारक पद जोवै ॥
अवर कथन इक सुनने योगा, सुनकर धारहु सुवुधि लोगा।
नारिनकों लागै वड रोगा, मास मास प्रति होहि अजोगा ॥
ताकी क्रिरिया सुनि गुणवन्ता जा विधि भापें श्रीभगवंता।
दिवस पांच बीतें सुचि होई, पांच दिनालौं मलिन जु सोई ॥
उक्तं च श्लोक—त्रिपक्षे शुद्ध्यते सूती, रजसा पंचवासरं।
अन्यशक्ता च या नारी, यावज्जीवं न शुद्ध्यते ॥

अर्थ—प्रसूता स्त्री डेढ महीनेमें शुद्ध होय है, रजस्वला पांच द्रिवस गये पवित्र होय है अर जो स्त्री परपुरुष सों रत भई सो जन्म पर्यन्त शुद्ध नाहीं, सदा अशुचि ही है।

वेसरी छन्द।

पांच दिवसलौं सगरे कामा, तजिकर, रहिवौ एकै ठामा।
कछु धंधा करवौ नहिं जाको, भई अजोग अवस्था ताको ॥
निज भर्ताहूकों नहिं देखै, नीची दृष्टि धर्मको पेखै।
दिवस पांचलौं न्हावौ उचिता, नितप्रति कपड़ा धोवौ सुचिता ॥
काहूँसों सपरस नहिं करिवौ, न्यारे आसन वासन धरिवौ।
जो कवहूं ताके वासनसों, छुयौ राछ अथवा हाथनसों ॥
तो वह वासन ही तजि देवौ, या विधि-शुद्ध जिनाज्ञा लेवौ।
अन्न वस्त्र जल आदि सवैही, ताकौ छुऔ कछु नहि लेही ॥
कोरो पीस्यौ कछु नहिं गहिवो, ताकौ ताके ठामहि रहिवौ।
ठौर त्याग फिरवौ न कितैही, इह जिनवरकी आज्ञा है ही ॥

करवौ नाहीं असन गरिष्ठा, नाहीं दिवसें शयन वरिष्ठा।
हास कुतूहल तैल फुलेला, इक दिन माहिं न गीत न हेला॥
काजल तिलक न जाकों करिवौ, नाहिं बराबर मेहदी धरिवौ।
नख-केशादि सुधार न करनों, या विधि भगवत मारग धरनों॥
और त्रियनमें मिलवौ जाकों, पंच दिवस है वर्जित ताकों॥
चंडालीहूतें अति निंद्या, भाषैं जिनवर मुनिवर वंद्या॥
पंच दिवस पति ढिग नहिं जावौ, अर नहिं वाके सज्या रचावौ।
भूमिसयन है जोग्य जु ताकों, सिंगारादि न करनों जाकों॥
छट्ठे दिवस न्हाय गुणवन्ती, शुभ कपडा पहरै बुधिवन्ती।
ह्वै पवित्र पतिजुत जिन अर्चा, करवावै, धारै शुभ चर्चा॥
पूजा दान करै विधि सेती, शुभ मारग माहीं चित देती।
निसिको अपने पति ढिग जावै, तौ उत्तम बालक उपजावै॥
सुबुधि विवेकी सुव्रत धारी, शीलवन्त सुन्दर अविकारी।
दाता सूर तपस्वी श्रुतधर, परम पुनीत पराक्रम भर नर॥
जिनवर भरत बाहुबल सगरा, रामहणू पांडव अर बिदुरा।
लव अंकुश प्रद्युम्न सरीसा, वृषभसेन गौतम स्वामीसा॥
सेठ सुदर्शन जम्बू स्वामी, गज सुकुमार आदि गुणधामी।
पुत्र होय तौ या विधिका ह्वै, अर कबहूं पुत्री हो जो ह्वै॥
तो सुसील सौभाग्यवती अति, नेम-धरम परवीन हंसगति।
बाल सुब्रह्मचारिणो शुद्धा, ब्राह्मी सुन्दरिसी प्रतिबुद्धा॥
चन्दनबाला अनन्तमतीसी, तथा भगवती राजमतीसी।
अथवा पतिव्रता जु पवित्रा, ह्वै सुशील सीतासी चित्रा॥

कै सुलोचना कौशल्यासी, शिवा रुकमनी चीशल्यामी।
नीली तथा अंजना जैमी, रोहणि द्रौपद सुभद्रा तैसी ॥१००॥
अर जो कोऊ पापाचारी, पंच दिवस चोतें विन नारी।
सेवै विकल अन्ध अविवेकी, ते चंडालनिहूतें एकी ॥
अतिहिं घृणा उपजे ता समये, तातें कबहु न ऐसे रमिये।
फल लागै तौ निपट हि विकला, उपजै संतति मठ बेअकला ॥
सुत जन्में तौ कामी क्रोधी, लापर लंपट धर्म विरोधी।
राजावक वसुसे अति मूढ़ा, ग्रन्थनि माहिं अजस आरूढ़ा ॥
सत्यधोष द्विज पर्वत दुष्टा, धवलसेठसे पाप सपुष्टा।
पुत्री जन्में तौंहि कुशीली, पर-पुरुषा-रत अति अवहीली ॥
राव जसोधरकी पटरानी, नाम अमृतादेवि कहानि।
गई नरक छट्ठे पति मारे, किये कुवजसों कर्म असारे ॥
रात्रि विषै कपरा ह्वै नारी, तौ इह वात हियेमें धारी।
पंच दिवसमें सो निसि नाहीं, ता विन पंच दिवस श्रुतमाहीं ॥
इह आज्ञा धारो तजि पापा, तव पावौ आचार निपापा।
अब सुनि गृह पतिके षट कर्मा, जो भाषैं जिनवरको धर्मा ॥
जिन पूजा अर गुरुकी सेवा, फुनि स्वाध्याय महासुख देवा।
संजम तप अर दान करौ नित, ए षट कर्म धरो अपने चित ॥
इन कर्मनि करि पाप जु कर्मा, नासें भविजन सुनि जिनधर्मा।
चाकी उखरी और बुहारी, चूला बहुरि परंडा धारी ॥
हिंसा पांच तथा घर धंधा, इन पापनि करि पाप हि बंधा।
तिनके नासनकों षट कर्मा, सुभ भाषै जिनवरको धर्मा ॥१०॥

ए सब रीति मूलगुण माहीं, भाषे श्रीगुरु संसै नाहीं।
आठ मूलगुण अंगीकारा, करौ भव्य तुम पाप निवारा॥
अर तजि सात विसन दुखकारी, पापमूल दुरगति दातारी।
जूवा आमिष मदिरादारी, आखेटक चोरी परनारी॥
जूवा सम नहिं पाप जु कोई, सब पापनिको इह गुरु होई।
जूवारीको संग जु त्यागौ, द्यूतकर्मके रंग न लागौ॥
पासा मारि आदि बहु खेला, सब खेलनिमें पाप हि भेला।
सकल खेल तजि जिन भजि प्रानी, जाकर होय निजातमज्ञानी॥
ठौर ठौर मद मास जु निंदै, ताते तजिये प्रभुको वंदै।
तज वेश्या जो रजक-शिलासम, गनिकाको घर देखहु मति तुम॥
त्यागि अहेरा दुष्ट जु कर्मा, ह्वै दयाल सेवो जिनधर्मा।
करै अहेरा जु अहेरी, लहै नर्कमें आपद ढेरी॥
क्षत्रीको इह होय न कर्मा, क्षत्रीको है उत्तम धर्मा।
क्षत् कहिये पीराको नामा, पर-पीरा हर जिनको कामा॥
क्षत्री दुर्बलको किमि मारै, क्षत्री तो पर-पीरा टारै।
मांस खाय सो क्षत्री कैसो, वह तो दुष्ट अहेरी जैसो॥
अर जु अहेरी तजै अहेरा, दयापाल ह्वै जिनमत हेरा।
तौ वह पावै उत्तमलोका, सबको जीवदया सुखथोका॥
त्यागो चोरी जो सुख चाहौ, ठग विद्या तजि त्यो भविलाहो।
परधन भूले-बिसरे आयौ, राखौ मति यह जिन श्रुत गायौ॥२०
लूटि लेहु मति काहूको धन, परधन हरवेकों न धरो मन।
चुगली करन, लुटावौ काकों, छाड़ो भाई अन्यरमाकों॥

काहूकी न धरोहरि दाबौ, सूधो राखौ मित्र हिसाबो।
तोल माहिं घटि-बधि मति कारौ, इह जिन आज्ञा हिरदैं धारौ॥

दोहा—तजौ चोरकी संगतो, तासू नहिं व्यवहार।
चोरयो माल गृहौ मती, जो चाहौ सुख सार॥
परदारा सेवन तजौ, या सम दोष न और।
याकों निदें जिनवरा जा त्रिभुवनके मौर॥
पापी सेवें पर तिया, परे नर्कमें जाय।
तेतीसा-सागर तहां दुख देखे अधिकाय॥
तातें माता बहन अर, पुत्री सम परनारि।
गिनों भव्य तुम भावसों, शीलवृत्त उरधारि॥
जे जेठी ते मात सम, समवय बहन समान।
आप थकि छोटि उमरि, सोनिज सुता समान॥
निन्दे बिसन जु सात ए, सात नरक दुखदाय।
मन-वच-तनए परिहरौ, भजो जिनेसुर पांय॥
इन विसननि करि बहु दुखी, भयो अनन्ते जीव।
तिनको को बर्णन करै, ए निदें जगपीव॥
कैयकके भापूं भया नाम, सूत्र अनुसार।
राव युधिष्ठिर सारिखे, धर्मोत्तम अविकार॥३०॥
दुर्जोधनके हठ थकी, एक बार हो द्यूत।
रमिकर अति आपद लही, जात्यौ कौरवधूत॥
हारि गये पांडव प्रगट, राज सम्पदा मान।
[illegible] माहिं [illegible]॥

पीछे सब तजि जगतकों, जगदीश्वर उरध्याय।
श्रीजिनवरके लोककों, गये जुधिष्ठिर राय॥
मांस भखनतें बक नृपति, गये सातवें नर्क।
तीस तीन सागर महा, पायौ दुख संपर्क॥
अमल थकी जदुनन्दना, रिपिकों रिस उपजाय।
भये भस्मभावा सबैं, पाप करम फल पाय॥
कंकय उबरे जिनजती, भये मुनीसुर जेह।
येह कथा जिन सूत्रमें, तुम परहट सुन लेह॥
चारुदत्त इक सेठ हौ, करि गनिकासों प्रीति।
लही आपदा जिह घनी, गई सम्पदा बीति॥
ब्रह्मदत्त पापी महा, राजा हौं मृग मार।
आखेटक अपराधतें, बूड्यौ नरक मंझार॥
चोरी करि शिवभूति शठ, लहै बहुत दुख दोष।
ताकी कथा प्रसिद्ध है, कहिवेको सत घोष॥
परदारा पर चित धरी, रावणसे बलवन्त।
अपजस लहि दुरगति गये, जे प्रतिहरि गुणवन्त॥४०॥
बिसन बुरे बिसनी बुरे, तजौं इनोंते प्रीति।
ब्रत क्रियाके शत्रु ये, इनमें एक न नीति॥
अब सुनि भैया बात इक, गुण ईकबीसा जेह।
इनहीं मूलगुणानिकों, परिवारो गनि लेह॥
लज्जा दया प्रसांसता, जिनमारग परतीति।
पर औगुनको ढांकिबो, पर उपगार सुरीति॥

सोमदृष्टि गुणगृहणता, अर गरिष्ठता जानि।
सबसों मित्राई सदा, वैरभाव नहिं मानि॥
पक्ष पुनीति पुमानकी, दीरघदरसी सोय।
मिष्ट बचन बोले सदा, अर बहुज्ञाता होय॥
अति रसज्ञ धर्मज्ञ जो, है कृतज्ञ फुनि तज्ञ।
कहै तज्ञ जाकूं बुधा, जो होवै तत्वज्ञ॥
नहीं दीनता भाव कछु नहिं अभिमान धरेय।
सबसों समता भाव है, गुणको चिंता करेय॥
पाप क्रिया सब परिहरौ, ए गुण होय इकीस।
इनकों धारे सो सुधी, लहै धर्म जगदीश॥
इन गुण बाहिर जीव जो, श्रावक नाहिं गनेय।
श्रावक ब्रतके मूलये, श्रीजिनराज कहेय॥
श्रावक ब्रत सब जातिको, जतिब्रत, द्विज, नृपवानि।
और जाति नहिं ह्वै जती, इह जिन आज्ञा जानि॥५०
अर एते विणज न करे, श्रावक प्रतिमा धार।
धान पान मिष्टान्न अर, मोम हींग हरतार॥
मादिक लवण जु तेल घृत, लोह लाख लकडादि।
दल फल कन्दादिक सबै, फूल फूल सीसादि॥
चीट चाबका जेवडा, मूज डाभ सिण आदि।
पसु पंखी नहिं विणजवो, साबन मधु नीलादि॥
अस्थि चर्म रोमादि मल, मिनख बेचवौ नाहिं।
बन्दि पकड़नी नाहिं कछु, इक आज्ञा श्रुतिमाहिं॥

पशु-भाडे मति द्यो तथा, त्यागि शस्त्र व्योपार ।
वध बंधन विवहार तजि, जो चाहौ भवपार ॥
जहां निरन्तर अगनिको, उपजै पापारम्भ ।
सब व्यौहार तजौ सुधी, तजौ लोभ छल दम्भ ॥
कन्दोई लोहार अति, सुवर्णकार शिल्पादि ।
सिकलीगर बाटी प्रमुख, अवर लखेरा आदि ॥
छीपी वा रङ्गराजिका, अथवा कुम्भजुकार ।
व्रत धारि नर नहिं करे उद्यम हिंसाकार ॥
रंग्यो नीलथकी जिनको, जो कपरा तजि वीर ।
अति हिंसा कर नीपनों, है अजोगि वह चीर ॥
कूप तड़ाग न सोखिये, करिये नहि अनर्थ ।
हिंसक जीव न पालिये, यह धारौ श्रुति अर्थ ॥६०॥
विष न विणजवौ है भला, रसा विणजके मांहि ।
नहीं सीदरी सूतली, होय विणजके मांहि ॥
विणज करौ तो रतनको, कै कंचन रूपादि ।
कै रूई कपड़ा तनों, मति खोवौ भव वादि ॥
जिनमें हिंसा अल्प ह्वै, ते व्यापार करेय ।
अति हिंसाके विणजजे, ते सवही तज देय ॥
ए सब रीति कही वुधा, मूल गुणनिमें लीक ।
ते धारौ सरधा करी, त्यागौ बात अलीक ॥
जैसे तरुके जड गिनी, अरु मन्दिरके नींव ।
तैसें ए सब मूल गुण तप जप व्रतकी सींव ॥

वेसरी छन्द।

ए दुरगति दाता न कदेही, शिव कारण ह्वै देह विदेही।
सम्यक सहित महाफल दाता, सब गुननिको सम्यक त्राता ॥
समकितसों नहिं और जू धर्मा, सकल क्रियामें सम्यक पर्मा।
जाके भेद सुनो मन लाए, जाकरि आतम तत्व लखाए ॥
भेद बहुत पर द्वै बड़ भेदा, निश्चै अर विवहार सुवेदा।
निश्चय सरधा निज आतमकी, रुचि परतीति जु अध्यातमकी ॥
सिद्ध समान लखै निज रूपा, अतुल अनत अखंड अनूपा।
अनुभव-रसमें भीग्यौ भाई, धोई मिथ्यामारग काई ॥
अपनो भाव अपुनमें देखौ, परमानन्द परम रस पेखौ।
तीन मिथ्यात चौकड़ी पहली, तिन करि जीवनिकी मति गहली ॥
मोह प्रकृति हैं अट्ठावीसा, सात प्रबल भाषें जगदीसा ॥७०॥
सात गये सबहि नसि जावें, सर्व गये केवल पद पावें।
उपशम क्षय-उपशम अथवा क्षय, सात तनों कीयौ तजि सब भय ॥
ये निश्चय समकितको रूपा, उपजै उपशम प्रथम अनूपा।
सुनि सम्यक व्यवहार प्रतीता, देव अठारह दोष वितीता।
गुरु निरग्रन्थ दिगम्बर साधू, धर्म दयामय तत्व अराधू ॥
तिनकी सब दिढ़ करि धारे, कुगुरु कुदेव कुधर्म निवारे।
सबनि तत्वको निश्चय करिबौ, यह विवहार सुसम्यक धरिबौ ॥
जीव अजीवा आस्रव बंधा, संवर निर्जर मोक्ष प्रबन्धा।
[illegible] होई लखै जथारथ सम्यक सोई ॥

ये हि पदारथ नाम कहावै, एई तत्व जिनागम गावै।
नव पदार्थमें जीव अनन्ता, जीवन मांहि आप गुवन्ता ॥
लखै आपकों आपहि माहीं, सो सम्यकदृष्टी शक नाहीं।
ए दोय भेद कहै समकितके, ते धारौ कारण निज हितके ॥
सम्यकदृष्टी जे गुण धारै, ते सुनि जे भव-भाव विडारै।
अठ मद त्यागै निर्मद होई, मादव धर्म धरै गुन सोई ॥
राजगर्व अरु कुलको गर्वा, जाति मान बल मान जु सर्वा।
रूप तनू मद तपको माना, संपति अर विद्या अभिमाना ॥
ए आठों मद कबहु न धारै, जगमाया तृण-तुल्य निहारै।
अपनो निधि लखि अतुल अनन्ती, जो पर-पंचनमें न बसंती ॥
अविनश्वर सत्ता विकसंती, ज्ञान-दृगोत्तम द्युति उलसंती।
तामें मगन रहै अति रङ्गा, भव-माया जानें क्षण भंगा ॥
तीन मूढ़ता दूरी नाखै, देव धर्म गुरु निश्चै राखै।
कुगुरु कुदेव कुधर्म न पूजा, जन चिना मत गहै न दूजा ॥
छह जु अनायतनी बुधि त्यागं, त्याग मिथ्यामत जिनमत लागै।
कुगुरु कुदेव कुधर्म बड़ाई, अर उनके दासनिकी भाई ॥
कबहुं करै नहि सम्यकदृष्टो, जे करिहैं ते मिथ्यादृष्टी।
शंका आदि आठ मल भांड़ै, करि परपञ्च न आयौ छांड़ै ॥
जिनवचमें शङ्का नहि ल्यावै, जिनवाणो उर धरि दिढ़ भावै।
जगको वांछा सब छिटकावै, निसप्रह भाव अचल ठहरावै ॥
जिनके अशुभ उदै दुख पोरा, तिनकी पीर हरै वर वीरा।
नाहि गलानि धरें मन माहो, सांची दृष्टि धरै शक नाहीं ॥

कबहूँ परको दोप न भाखै, पर उपगार दृष्टि नित राखै।
अपनों अथवा परको चित्ता, चल्यौ देखि थांभै गुणरत्ता॥
थिरीकरण समकितको अंगा, धारै समकित धार अभङ्गा।
जिन धर्मीसूं अति हित राखै, सो जिनमारग अमृत चाखै॥
तुरत जात वछरा परि जैसे, गाय जीव देय है तैसे।
साधर्मी परि तन धन वारैं, गुनवतसल्य धरैं अघ टारैं॥
मन वच काय करै वह ज्ञानी, जिनदासनिको दासा जानी।
जिनमारगकी करै प्रभावन, भावै ज्ञानी चउविधि भावन॥६०॥
सब जीवनिमें मैत्रीभावा, गुणवंतनिकूं लखि हरसावा।
दुखी देखि करुणा उर आनैं, लखि विपरीता राग न छानैं॥
दोपहु नाहीं है मध्यस्था, ए चउ भावन भावै स्वस्था।
जिनचैत्याले चैत्य करावै, पूजा अर परतिष्ठा भावै॥
तीरथजात्रा सूत्र जु भक्ति, चउविधि संघसेव है युक्ति।
ए है सप्त क्षेत्र परिसिद्धा, इनमें खरचै धन प्रतिबुद्धा॥
जीरण चैत्यालयकी मरमती,–करवावै, पुस्तककी बहु प्रति।
साधर्मीकूं बहु धन देवे, या विधि परभावन गुन लेवे॥
कहे अंग ए अष्ट प्रतक्षा, नहि धरवौ सोई मल लक्षा।
इन अगनि करि सीझै प्रानी, तिनको सुजस करै जिनवानी॥
जीव अनन्त भये भवपारा, कौलग कहिगे नाम अपारा।
कैयकके शुभ नाम वखानौं, श्रुत अनुसार हिएमें आनौं॥
अजन और अनन्तमती जो, राव उदायन कर्म हती जो।
रेवति राणी धर्म-गढ़ासा, सेठ जिनेन्द्रभक्त अघ नासा॥

पर औगुन ढांके जिह भाई, जिनवरकी आज्ञा उर लाई।
वारिषेण ओ विष्णुकुमारा, वज्रकुमार भवोदधि तारा ॥
अष्ट अंग करि अष्ट प्रसिद्धा, और बहुत हुए नर सिद्धा।
अठ मद त्यागि अष्ट मल त्यागा, तीन मूढ़ता त्यागि सभागा ॥
षट जु अनायतनाको तजिवौ, ए पच्चास महागुण भजिवौ।
अर तजिवौ तिनकूं भय सप्ता, निरभै रहिवौ दोष अलिप्ता ॥१००
इह भव पर भवको भय नाहीं, मरद बेदना भय न धराहीं।
हमरौ रक्षक कोऊ नाहीं, इह संसै नाहीं घट माहीं ॥
सबको रक्षक आयु जु कर्मा, कै जिनवर जिनवरको धर्मा।
और न रक्षक कोई काको, इह गुरु गायौ गाढ़ जु ताकों ॥
अर नहिं चोर तनों भय जाकों, अपनों निजधन पायौ ताकों।
चितधन धन चोरयौ नहिं जावै, तातें चित्त अडोल रहावै ॥
अर नहिं अकस्मात भय कोई, जिन सम लखियौ निज तन जोई।
चेतन तत्त्व लख्यौ अविनासी, तातें ज्ञानी है सुखरासी ॥
काहूको भय तिनकों नाहीं, भय रहिता निरवैर रहाहीं।
सप्त भया त्यागे गुण होई, सप्त विसन तजियो शुभ जोई ॥
सप्त सप्त मिलि चौदा गुन ए, मिले पचीसा गुणता जु लए।
पञ्च अतीचारनकों टारौ, शंका कांक्षा कबहू न धारौ ॥
नहिं दुरगंध भाव कवैहो, नहिं मिथ्यात सराह करैहो।
नहीं स्तवन मिथ्यादृष्टीको, यह लक्षण सम्यकदृष्टीको ॥
पञ्च अतीचारनकूं त्यागा, सो ह्वै पञ्च गुणा बड़भागा।
मिलि गुणताली चौवालीसा, गुणा होंहिं भाषें जगदीसा ॥

इनकूं धारै सम्यकती सो, भवभय तजि पावे मुक्ति सो।
ए गुन मिथ्यातीके नाहीं, आतमज्ञान न मिथ्या माहीं ॥

उक्तञ्च गाथा।

मयमूढमणायदणं, संकाइवसणभयमईयारं।
एसिं चउदालेदे, ण संति ते हुंति सद्दिट्ठी ॥

अर्थ—जिनके अष्ट मद नाहीं, तीन मूढ़ता नाहीं, षट अनायतन नाहीं, शंकादि अष्ट मल नाहीं, सप्त व्यसन नाहीं, सप्त भय नाहीं, पंच अतिचार नाहीं, ए चवालीस नाहीं ते सम्यकदृष्टी कहे।

दोहा—व्रतके मूल जु मूलगुण, सम्यक सबको मूल।
कह्यौ मूलगुणको सुजस, सुनि व्रतविधि अनकूल ॥

इति क्रियाकोषे मूलगुणनिरूपण।

बारह व्रत वर्णन

दोहा—द्वादस व्रतनिकी सु विधि, जा विधि भाषी बीर।
सो भाषों जिनगुन जपी, जे धारें ते धीर ॥
द्वादस व्रत माहें प्रथम, पंच अणुव्रतसार।
तीन अणुव्रत चारि फुनि, शिक्षाव्रत आचार ॥
हिंसा मृषा अदत्तधन, मैथुन परिग्रह साज।
एक देश त्यागी गृहो, सब त्यागी रिषिराज ॥
सब व्रत्तनिके आदिही, जीवदया-व्रतसार।
दया सारिसौ लोकमें, नहिं दजौ उपगार ॥

सिद्ध समान लख्यौ जिनें, निश्चय आतमराम ।
सकल आतमा आपसे, लखौ चेतना-धाम ॥
ते सब जीवनको दया, करें विवेकी जीव ।
मन वच तन करि सर्वको, शुभ वांछै जु सदीव ॥
सुखसों जीवौ जीव सहु, क्लेश कष्ट मति होह ।
तजौ पापका सर्वही, तजौ परस्पर द्रोह ॥
काहूको हु पराभवा, कबहु करौ मति कोइ ।
इह हमरी बांछा फलो, सुख पावौ सब लोई ॥
सबके हितकी भावना राखै परम दयाल ।
दयाधर्म उरमें धरो, पावं पद जु विशाल ॥
थावर पंच प्रकारके, चउविधि त्रस परवानि ।
सबसों मैत्री भावना, सो करुणा उर आनि ॥१०॥
प्रथोकाय जलकायका, अगनिकाय अर वाय ।
काय वहुरि है बनस्पति, ए थावर अधिकाय ॥
वे इन्द्रो ते इन्द्रिया, चउ इन्द्रिय पंचेन्द्रि ।
ए त्रस जीवा जानिये, भाषें माधु जिनेन्द्र ॥
कृत-कारित अनुमोद करि, धरें अहिंसा जेह ।
ते निर्वाण पुरी लहै, चउ गति प्राणी देह ॥
निरारम्भ मुनिकी दशा, तहां न हिंसा लेस ।
छहूँ काय पीराहरा, मुनिवर रहित कलेश ॥
गृहपतिके गृहजोगतें, कछु आरम्भ जु होइ ।
तातें थावरकाय को, दोप लगै अघ सोइ ॥

पै न करे त्रस घात वह मन वच तन करि धीर।
त्रस कायनको पीहरा जाने परकी पीर ॥
विना प्रयोजन वह बुधी, थावर हू पै रैन।
जो निशंक थावर हनें जिनके जिन नैन ॥
हिंसाको फल दुरगती, दया सुर्ग-सुख देह।
पहुंचावे फुनि शिवपुरे, अविनाशी जु करेह ॥
दया मूल जिन धर्मको, दया समान न और।
एक अहिंसा व्रत ही, सब व्रतनिको मौर ॥
यमनियमादिक बहुत जे, भाषें श्रीजिनराय।
ते सहु करुणा कारणें, और न कोई उपाय ॥२०॥
विना जैन मत यह दया, दूजे मत दीखै न।
दया मई जिनदास है, हिंसा विधि सीखै न ॥
दया दया सब कोउ कहै, मर्म न जाने मूर।
अणछान्यू पाणी पिवैं, तेहि दयातें दूर ॥
दया भली सब ही रटैं, भेद न पावैं कोय।
वरतैं अणगाल्यौ उदक, दया कहां ते होय ॥
दया विना करणी वृथा, यह भाषैं सब लोक।
न्हावैं अणगाले जलहि, बांधै अघके थोक ॥
छाण्यूं जल घटिका जुगल, पाछैं अगल्यो होय।
विना जैन यह वारता, और न जाने कोय ॥
दया समान न धर्म कोउ इह गावैं नरनारि।
निशा माहि भोजन करैं, जाहि जमारो हारि ॥

दया जहां ही धर्म है, इह जाने संसार।
पै नहिं पावे भेदकों, भक्ष अभक्ष विचार।
दया बड़ो सब जगतमें, धारै नाहिं तथापि।
परदारा परधन हरै, परै नरकमें पापि॥
दया होय तो धर्म है, प्रगट बात है एह।
तजै न तौहू द्रोह पर, धरै न धर्म सनेह॥
व्रत करै फुनि मूढधी, अन्न त्यागि फलखाय।
कंद मूलभक्षण करै, सो व्रत निह फल जाय॥२०॥
दया धर्म कीजै सदा, इह जंपै जग सर्व।
नहिं तथापि सब सम गिने, हनै न आठूं गर्व॥
परम धरम है यह दया, कथै सकल जन एह।
चुगली-चांटी नहिं तजै, दया कहांते लेह॥
दया व्रतके कारणें, जे न तजैं आरम्भ।
तिनके करुणा होय नहिं, इह भाषैं परब्रह्म॥
दया धर्मको छाडिकै, जे पशुघात करेय।
ते भव भव पीड़ा लहै, मिथ्या मारग सेय॥
दया बतावें सब मता, समझ न काहू माहिं।
धर्म गिने हिंसा विषैं, जतन जीवको नाहिं॥
दया नहीं परमत विषैं, दया जैनमत माहिं।
बिना फैन यह जैन है यामें संशय नाहिं॥
दया न मिथ्या मत विषैं, कही कहा है वीर।
करुणा सम्यक भाव है, यह निश्चय धरि धीर॥

काहेके वे देवता, करैं जु मांस आहार।
ते चंडाल बखानिये, तथा श्वान मार्जार॥
देवनिको आहार है—अमृत और न कोय।
मांसासी देवानिकूं, कहै सु मूरखि होय॥
मंगल कारण जे जड़ा जीवनिको जु निपात।
करें अमङ्गल ते लहैं, होय महा उतपात॥४०॥
जे अपने जीवे निमित, करैं औरको नास।
ते लहि कुमरण वेगही, गहैं नरककों वास॥
मद्य मांस मधु खाय करि, जे बांधे अघकर्म।
ते काहेके मिनख हैं, इह भाखै जिनधर्म॥
कंदमूल फल खाय करि, करै जु वनको वास।
तिनको वनवासो वृथा, होय दयाको नास॥
बिना दया तप है कुतप, जाकरि कर्म न जांय।
हिंसक मिथ्यामत धरा, नरक निगोद लहाय॥
जैसो अपनों आतमा, तैसे सबही जीव।
यह लखि करुणा आदरौ भाखैं त्रिभुवन पीव॥

छन्द जोगीरासा

काहेके ते तापस दुष्टा, करुणा नाहिं धरावैं।
कर अपनी आरम्भ सपष्टा, जीव अनेक जरावैं।
ते तजि कपड़ा तपके कारण, धारैं शठमति चर्मा।
ते न तपस्वी भवदधि तारण, बांधैं अशुभ जु कर्मा॥

रिषि तौ ते जे जिनवर भक्ता, नगन दिगम्बर साधा।
भव तनु भोगथकी जु विरक्ता, करै न थिर चर बाधा॥
मैत्री मुदिता करुणा भावा, अर मध्यस्थ जु धारै।
राग दोष मोहादि अभावा, ते भवसागर तारै॥
बिना दया नहि मुनिव्रत होई, दया बिना न गृही ह्वै।
उभय धर्मको सरवस करुणा, जा बिन धर्म नहीं ह्वै॥
दया करौ मुखतें सब भाखैं भेद न पावें पूरा।
बासी भोजन भखि करि भांदू रहें धर्मतें दूरा॥
बासी भोजन माहिं जीव बहु, भखे दया नहिं होई।
दया बिना नहिं धर्म न व्रता, पावें दुरगति सोई॥
अत्थाणा संधाण मथाणा, कांजी आदि अहारा।
करें विवेक बाहिरा कुबुधी, तिनके दया न धारा॥
मांसासीके घरको भोजन करें कुमतिके धारी।
तिनके घट करुणा कहु कैसें, कहाँ शाध आचारी॥
तातौ पाणी आठ हि पहरा, आगें त्रस उपजाहीं।
ताकी तिनकों सुधिबुधि नाहीं, दयाकहां तिनमाहीं॥
निसिको पीस्यौ निसिको रांध्यौ बींधौ सीधौ खावें।
हरितकाय रांधो सब स्वादे, दया कहांतें पावे॥
चर्म-पतित घृत तेल जलादिक, तिनमें दोष न मानें।
गिनें न दोष हींगमें मूढा, दया कहांतें आनें॥
हाटें विकते चून मिठाई, कहें तिनें निरदोषा।
भखें अजोगि अहार सबै ही, दया कहांतें पोषा॥

दूध दही अरु छाछि नीरको, जिनके कछु न विचारा।
दया कहां है तिनके भाई, नहीं शुद्ध आचारा ॥
सूग नहीं मल मूत्रादिक कीजो, ढोर समाना तेई।
तिनकूं जे नर जैनी जाने, ते नहिं शुभमति लेई ॥
बाधक जिन शासन सरधाके, साधकता कछु नाहीं।
साधु गिनें तिनकूं जे कोई, ते मूरख जग माहीं ॥
एक बारको नियम न कोई, बार बार जलपाना।
बार बार भोजनको करिबौ, तिनके व्रत न जाना ॥
त्रसकायाको दूषण जामें, सो नहिं प्रासुक कोई।
भखै अख्त्रो शठ मति जोई, नाहिं व्रतधर होई ॥
दया धर्मको परकाशक है, जिन मन्दिर जग माहीं।
ताहि न पूजें पापी जीवा, तिनके समकित नाहीं ॥
कारण आतम ध्यान तणीं है, श्रीजिनप्रतिमा शुद्धा।
ताहि न वन्दें निन्द जु तेई, जानहु महा अबुद्धा ॥
बूड़ं नरक मंझार महा शठ, जे जिन प्रतिमा निंदें।
जाहिं निगोद विवेक-वितोता, जे जनगृह नहिं वंदे ॥
अज्ञानो मिथ्याती मूढ़ा, नहीं दयाको लेशा।
दयावन्त तिनकूं जे भाषें, ते न लहें निजदेशा ॥

दोहा—सुर नर नारक पशुगति, ए चारों परदेश।
पंचमगति निज देश है, यामें भ्रांति न लेश ॥
पंचम गतिको कारणा, जीव दया जग माहिं।
दया सारिखो लोकमें, और दूसरौ नाहिं ॥

दया दोय विधि है भया, स्वपर दया श्रुति माहिं।
सो धारो दृढ चितमें, जाकरि भव-भ्रम जाहिं ॥
स्वदया कहिये सो सुधी, रागादिक अरि जेह ।
हनें जीवकी शुद्धता, टारि तिन्हें शिव लेह ॥६०॥
प्रगट करै निज शुद्धता, रागादिक मदमारि ।
निज आतम रक्षा करे, डारै कर्म जु तारि ॥
सो स्वदया भाषै गुरु, हरै—कर्म विस्तार ।
निज हि वचावै कालतें, करै जीव निस्तार ॥
षट कायाके जीव सहु, तिनत हेत रहाय ।
वैरभाव नहि कोयसूं, सो पर दया कहाय ॥
दया मात सब जगतकी, दया धर्मको मूल ।
दया उधारै जगततें, हरै जीवकी भूल ॥
दया सुगुनकी वेलरी, दया सुखनकी खान ।
जीव अनन्ता सीजिया, दयाभाव उर आन ॥
स्व-पर दया दो विधि कही, जिनवाणीमें सार ।
दयावन्त जे जीव हैं, ते पावें भवपार ॥

सवैया इकतीसा ।

[illegible]कृतकी खानि इन्द्रपुरीकी नसैंनी जानि,
पापरज खण्डनकों पौनरासि पेखिये ।
[illegible]वदुख-पावक बुझायवेकूं मेघमाला,
कमला मिलायवेकों दूती ज्यू बिसेखिये ॥

मुकति-बधूसों प्रीति पालिवेकों आली सम,
कुगतिके द्वार दिढ़ आगलसी देखिये।
ऐसी दया कीजै चित्त तिहूं लोक प्राणी हित,
और करतूति काहू लेखेमें न लेखिये ॥

दोहा—जो कबहूं पाषाण जल, माहि तिरै अरभान।
ऊगै पश्चिमकी तरफ, दैवयोग परवान ॥
शीतल गुन ह्वै अगनिमें, धरा पीठ उलटेय।
तौहू हिंसाकर्मतें, नाहीं शुभमति लेय ॥
जो चाहै हिंसा करी, धर्म मुकतिको मूल।
सो अगनीसूं कमलवन, अभिलाषै मतिभूल ॥७०॥
प्राणघात करि जो कुधा, वांछै अपनी वृद्धि।
सो सूरजके अस्ततें, चाहे वासर शुद्धि ॥
जो चाहै व्रत-धर्मकों, करै जीवको नास।
सो शठ अहिके वदनते, करै सुधाकी आस ॥
धर्मबुद्धि करि जो अवुध, हरै आपसे जाव।
सो विवाद करि जस चहै, जल-मंथनतें घीव ॥
जैसें कुमती नर महा, कालकूटकूं पीय।
जीवौ चाहै जीव हति, तैसें श्रेय स्वकीय ॥
करि अजीर्ण दुरबुद्धि जो, इच्छै रोग-निवृत्ति।
तैसें शठ परघात करि, चाहै धर्म प्रवृत्ति ॥
दयाथकी इह भव सुखी, परभव सब सुख होय।
मग्ग मकति दायक दया,—धारै उधरै सोय ॥

इन्द नरिन्द फणिन्द अर, चद सूर अहमिंद ।
दयाथकी इह पद लहै, होवै देव जिणंद ॥
भव सागरके पार ह्वै, पहुंचै पुर निर्वान ।
दया तणों फल मुख्य सो, भाषें श्रीभगवान ॥
हिंसा करिकें राजसुत, सुवल नाम मतिहीन ।
इह भव पर भव दुख लहे, हिंसा तजौ प्रवीन ॥
चौदसिके इक दिवसकी, दया धारि चिंडार ।
इह भव नृप पूजित भयौ, लह्यौ सुरग सुखसार ॥८०॥
जे सीझे जे सीझि हैं, ते सब करुणा धार ।
जे बूढे जे बूढ़ि है, ते सब हिंसाकार ॥
अतीचार तजि, व्रत भजि करुणा तिनतें जाय ।
वध बंधन छेदन वहुरि, बोझ धरन अधिकाय ॥
अन्न पानको रोकिवौ, अतीचार ए पंच ।
त्यागौ करुणा धारिके, इनमें दया न रंच ॥
हिंसा तुल्य न पाप है, दया समान न धर्म ।
हिंसक बूड़ैं नरकमें, बांधे अशुभ जु कर्म ॥
हुती धनश्री पापिनी, वणिकनारि विभचारि ।
गई नरकमें पुत्र हति, मानुष जन्म विगारि ॥
हिंसाके अपराधतें, पापी जीव अनन्त ।
गये नरक पाये दुखा, कहत न आवै अन्त ॥
जे निकसै भव कूपतें, ते करुणा उर धार ।
जे बूड़ै भव कूपमें, ते सव हिंसाकार ॥

महिमा जीव दया यनी, जानें श्रीजगदीश।
गण धरहू कथि ना सकें, जे चउ ज्ञान अधीश॥
कहि न सकें इन्द्रादिका, कहि न सकें अहमिंद्र।
कहि न सकें लाकांतिका, कहि न मकें जोगिन्द्र॥
कहि न सकें पातालपति, अगणित जीभ बनाय।
सो महिमा करुणा तणी, हम पैं बरनिन जाय॥६०॥
दया मातको आसरो, और सहाय न कोय।
करि प्रणाम करुणा व्रतें, भाषों सत्य जु सोय॥

इति दयाव्रत निरूपण

हिंसा है परमादतें, अर प्रमादतें झूठ।
तातें तजौ प्रमादकूं, देय पापसों पूठ॥

चौपाई—श्री पुरुपारथ सिद्धि उपाय, ग्रन्थ सुन्यां सब पाप लुभाय।
जहं द्वादस व्रत कहे अनूप, सम दम यम नियमादि स्वरूप॥
सम जु कहावै समता भाव, सम्यकरूप भवोदधि नाव।
दम कम मन इन्द्रिय रोध, जाकर लहिये केवल बोध॥
आवो जीव बरत यम कह्यो, अवधिरूपसों नियम जु लह्यो।
ऐसे भेद जिनागम कहै, निकट भव्य ह्वै सो ही गहै॥
तामें सत्य कह्यो चउ भेद, सो सुनि करि तुम धरहु अछेद।
चउविधि झूंठ तनों परिहार, सो है सत्य महागुणसार॥
प्रथम असत्य तजौ बुध वहै, वस्तु छतीकूं अछती कहै।
दूजे अछतीकों जो छती, भाषै अविवेकी हतमती॥

तीज कहै और सों और, बिरथा मूढ़ करै झकझोर।
चौथे झूठ तनें त्रय भेद, गर्हित सावद प्रीत उछेद ॥
एकसब कृत कारित अनुमंत, मन वच तन करि तज गुनवंत।
चुगला-चांटी परकी हासि, कर्कश बचन महा दुखराशि ॥
विपरीत न भाषौ बुधिवान, सबद तजौ अन्याय सुमान।
वचन प्रलापविलाप न बोलि, भजि जिननायक तजि सहुभोलि ॥
भाषौ मत उतसूत्र कदेह, मिथ्यातमसों तजो सनेह।
ये सब गर्हित वचन तजेह, जिनसासनकी सरधा लेह ॥
बहुरि सबै सावद्य अजोग, बचन न बोलौ सुबुधी लोग।
छेदन भेदन मारण आदि, त्यागौ अशुभ बचन इत्यादि ॥
चोरी जोरी डाका दौर, ए उपदेश पाप सिरमौर।
हिंसा मृषा कुशील विकार, पाप बचन त्यागौ व्रतधार ॥
खेती विणज विवाह जु आदि, वचन न बोलै व्रती अनादि।
तजहु दोषजुत बानी भया, बोलहु जामें उपजै दया ॥
ए सावद्य वचन तजि धीर, तजि अप्रीति वचन वर वीर।
अरति करन भय करन न बोल, शोक करन त्यागौ तजि भोल ॥
कलह करन अघ करन तजेह, बैर करन वाणी न भजेह।
ताप करन अर पाप प्रधान, त्यागै वचन महा मतिवान ॥
मर्मछेदको वचन न कहौ, जो अपने जियको शुभ चहौ।
इत्यादिक जे अप्रिय बैन, त्यागहु सुनि करि मारग जैन ॥
बोलौ हिय मित वानी सदा, संसय बानि बोलि न कदा।

अविरुध अव्याकुलता लिये, बालहु करुणा धरिकै हिये ।
कबहु ग्रामणो वचन न लपौ, सदा सर्वदा श्रीजिन जपौ ॥
अपनी महिमा कबहु न करौ, महिमा जिनवरकी उर धरौ ।
जो शठ अपनी कीरति करै, सो मिथ्यात सरूपजु धरै ॥१०
निन्दा परकी त्यागहु भया, जो चाहौ जिनमारग लया ।
अपनी निन्दा गहरी करौ, श्रीगुरुपै तप व्रत आदरौ ॥
पापनिको प्रायश्चित्त लेह, माया मच्छर मान तजेह ।
होवै जहां धर्मको लोप, शुभ किरिया हौवै फुनि गोप ॥
अर्थ शास्त्रको ह्वै विपरीत, मिथ्यातमकी ह्वै परतीत ।
तहां छांड़ि शंका प्रतिबुद्ध, भाषै सूत्र वचन अविरुद्ध ॥
इनमें शंका कबहु न करहू, यही बुद्धि निश्चय उर धरहू ।
सत्य मूल यह आगम जैन, जैनी बोले अमृत बैन ॥
चर्वाक बोधा विपरीत, तिनके नाहिं सत्य परतीति ।
कौलिक पातालिक जे जानि, इनमें सत्य लेश मति मानि ॥
सत्य समान न धर्म जु कोय, बड़ो धर्म इह सत्य जु होय ।
सत्य थकी पावै भव पार, सत्यरूप जिन मारग सार ॥
सत्य प्रभाव शत्रु ह्वै मित्र, सत्य समान न और पवित्र ।
सत्य प्रसाद अगनि ह्वै शीत, सत्य प्रसाद होय जगजीत ॥
सत्य प्रभाव भृत्य ह्वै राव, जल ह्वै थल धरिया सत भाव ।
सुर ह्वै किंकर वनपुर होय, गिरि ह्वै घर सम सतकरि जोय ॥
सर्प माल ह्वै हरि मृग रूप, विल सम ह्वै पाताल विरूप ।
कोऊ करै शस्त्रकी घात, शस्त्र होई सो अंबुज पात ॥

हाथी दुष्ट होय सब स्याल, विष ह्वै अमृतरूप रसाल।
कठिन सुगम ह्वै सत्य प्रभाव, दानव दीन होय निरदाव ॥२०
सत्य प्रभाव लहै निज ज्ञान, सत्य धरै पावै वर ध्यान।
सत्य प्रसाद होय निरवाण, सत्य बिना न पुरुष परवाण ॥
सत्य प्रसाद वणिक धन देव, राजा करि पाई बहु सेव।
इह भव पर भव सुखमय भयौ, जाको पाप करम सब गयौ ॥
झूठ थकी वसु राजा आदि, पर्वत विप्र सत्यघोषादि।
जग देवादिक वाणिज घनें, गये दुरगति जाय न गिनें ॥
सत्य दयाको रूप न दोय, दया बिना नहिं सत्य जु होय।
सत्य तनें द्वय भेद अछेद, विवहारो निश्चय निरखेद ॥
निश्चै सत्य निजातम बोध, विवहारी जिन बचन प्रबोध।
सत्य विना सब व्रत तप आदि, सत्य सकल सूत्रनमें आदि ॥
सत्य प्रतिज्ञा विन यह जीव, दुरगति लहै कहें जगपीव।
सूकर कूकर वृक चडार, घू घू स्याल काग मार्जार ॥
नाग आदि जे जीव विरूप, लापर सबतें निर्दय रूप।
सबतें बुरा महा अरपर्स, लापरका लखिये नहि दर्श ॥
चुगली-सांचहुं झूठहि जानि, चुगल महा चडाल समान।
चुगली उगलि मुखतें जबै, इह भव परभव खांये तबै ॥
सत्य हेत धारौ भवि मौन, सत्य बिना सब संजम गौन।
धारा कामहु कारण सत्य, मन बच तन करि तजौ असत्य ॥
मुनिके सत्य महाव्रत होय, गृहिक सत्य अणुव्रत होय।
मुनितो मोन गहें कै जैन,—वचन निरूपैं अमृत बैन ॥३०

लौकिक वचन कहैं नहिं साधु, सब जीवनिके मित्र अगाध।
मृषावाद नहिं बोले रती, सो जिनमारग सांचे जती॥
श्रावकको किंचित आरम्भ, त्यागे कुविसन पापारम्भ।
लौकिक वचन कहन जो परै, तौ फिर पाप वचन परिहरे॥
पर उपगार दयाके हेत, कबहुंक किंचित झूठहु लेत।
जतौ आटे माहैं लोन, ते तौ बोले अथवा मौन॥
झूठ थकी उबरैं पर प्रान, तौ वह सत्य झूठ परमान।
अपने मतलब कारिज झूठ, कबहुं न बोलें अमृत बूठ॥
प्राण तजै पर सत्य न तजै, यदवा तदवा वचन न भजै।
यहै देह अर भोगुपभाग, सब हा झूठ गिनें जग रोप॥
परिगृहकी तृष्णा नहिं करै, करि प्रमाण लालच परिहरै।
बाप झूठको है यह लोभ, याहि तजैं पावैं व्रत शोभ॥
सत्य प्रभाव सुजस अति बधै, सत्य धरैं जिन आज्ञा सधै।
राजद्वार पंचायति मांहि, सत्यवन्त पूजत सक नाहिं॥
इन्द्र चन्द्र रवि सुर धरणेंद्र, सत्य बचे अहमिन्द्र मणिन्द्र।
करे प्रसंसा उत्तम जानि, इहे सत्य शिवदायक मानि॥
दया सत्यमें रञ्च न भेद, ए दोऊ इकरूप अभेद।
विपति हरन सुखकरन अपार, याहि धरें तैं ह्वै भवपार॥
याहि प्रसंसें श्रीजिनराय, सत्य समान न और कहाय।
भुक्ति मुक्ति दाता यह धर्म, सत्य बिना सब गनिये भर्म॥४०
अतीचार पांचों तजि सखा, जातें जिन वच अमृत चखा।
तजि मिथ्योपदेश मतिवान, भजि तन मन करि श्रीभगवान॥

देहि मूढ़ मिथ्याउपदेश, तिनमे नाहिं सुगतिको लेश ।
बहुरि तजौ जु रहो ब्याख्यान, ताकों व्यक्त सुनों व्याख्यान ॥
गुपत वारता परको कोइ, मति परकासौ मरमी होइ ।
कूट कुलेख क्रिया तजि वीर, कपट कालिमा त्यागहु धीर ॥
करि न्यासापहार परिहार, ताको भेद सुनूं ब्रतधार ।
पेलो आय धरोहरि धरै, अर कबहु विसरन वह करै ॥
तौ वाकों चित एम जु भया, देहु परायो माल जु लया ।
भूलिर थोरो मांगै वहै, तौ वाकों समझायर कहै ॥
तुमरो दोनों इतनो ठीक, अलप बतावन बात अलीक ।
ले जावौ तुमरो यह माल, लेखामें चूकौ मति लाल ॥
घटि देवेको जो परणाम, सो न्यासापहार दुख धाम ।
अथवा धरी पराई वस्त, जाकी बुद्धि भई विध्वस्त ॥
और ठौरकी और जु ठौर, करै सोइ पापनि सिरमौर ।
पुन साकारमंत्र है भेद, तजौ सुबुद्धी सुनि जिनपद ॥
दुष्ट जीव परको आकार, लखता रहै दुष्टताकार ।
लखि करि जानै परको भेद, सो पावै भव बनमें खेद ॥
परमंत्रिनको करइ विकाश, सो खल लहै नरकको वास ।
जो परद्रोह धरै चितमाहिं, इह भव दुखलहि नरकहिं जाहि ।५०
अतीचार ए पांचों त्यागि, सत्य धरमके मारग लागि ।
परदारा परद्रव्य समान, और न दोष कहें भगवान् ॥
परद्रोह सो पाप न और, निंद्यौ श्रुतमें ठौर जु ठौर ।
जिन जान्यूं निज आतमराम, तिनके परधन सों नहिकाम ॥

सत्य कहैं चोरी पर नारि,—त्यागी जाइ यहै उरधारि।
झूण्ठ बकैं तें जैनी नाहिं, परधन हरन न या मत माहिं॥

दोहा—सत्यप्रभावै धर्मसुत, गये मोक्ष गुणकोश।
लहे झूठ अर कपटतैं, दुर्जोधन दुख दोष॥
जे सुरझें ते सत्य करि, और न मारग कोय।
जे उरझें ते झूंठ करि, यह निश्चै उर लोय॥
सत्यरूप जिनदेव है, सत्यरूप जिनधर्म।
सत्यरूप निर्ग्रन्थ गुरु, सत्य समान न पर्म॥
सत्यारथ आतम धरम, सत्यरूप निर्वाण।
सत्यरूप तप संयमा, सत्य सदा परवाण॥
महिमा सत्य सुव्रतकी, कहि न सकें मुनिराय।
सत्य वचन परभावतें, सेवैं सुरनर पांय॥
जैसो जस है सत्यको, तैसौ श्रीजिनराय।
जानैं केवल ज्ञानमें, परमरूप सुखदाय॥
और न पूरण लखि सकें, कीरति सुर नरनाग।
या व्रतकूं धारैं सदा, तेहि पुरुष वड़भाग॥६०॥
नमस्कार या व्रतकों, जो व्रत शिव-सुख देय।
अर यांके धारीनकों, जे जिनशरण गहेय॥
दया सत्यकों कर प्रणति, भाषों तीजों व्रत्त।
जो इन द्वय बिन ना हुवै, चोरी त्याग प्रवृत्त॥

छन्द चाल।

चोरी छांड़ौ बड़ भाई, चोरी है अति दुखदाई।
चोरी अपजस उपजावै, चोरीतैं जस नहिं पावं
चोरीतैं गुणगण नाशा, चोरी दुर्बुद्धी प्रकाशा।
चोरीतैं धर्म नशावै, इह आज्ञा श्रीगुरु गावै॥
चोरीसों माता ताता, त्याग लखि अपनो घाता।
चोरीसे भाई बंधा, कबहुं न राखै संबन्धा॥
चोरी तें नारि न नीरै, चरीतें पुत्र न तीरै।
चोरी तें मित्र बिडारै, चोरी सां स्वामि न धारै॥
चोरी सों न्याति न पांती, चोरीसों कबहुं न साती।
चोरी तें राजा दण्डै चोरी तें सीस बिहंडै॥
चोरी तें कुमरण होई, चोरीमें सिद्ध न कोई।
चोरी तें नरक निवासा, चोरी तें कष्ट प्रकाशा॥
चोरी तें लहै निगोदी चोरी तें जोनि जु बोदी।
चोरीमें सुमति न आवै, चोरीतें सुगति न पावै॥
चोरी तें नासे करुणा, चोरीमें सत्य न धरणा।
चोरी तें शील पलाई, चोरीमें लोभ धराई॥७०॥
चोरी तें पाप न छूटै, चोरी तें तलवर कूटै।
चोरी तें ईजति भंगा, त्यागो चोरनिको संगा॥
चोरी करि दोप उपावै, चोरी करि मोक्ष न पावै।
चोरीको भेद अनेका, त्यागौ सब धारि विवेका॥

परको धन भूले-विसरे, राखौ मति ज्यों गुण पसरे।
परको धन गिरियोपरियो, दाबौ मति कबहुं न धरियौ ॥
तोला घटिबधि जिन राखै, बोलौ मति कूड़ी साखै।
कबहुं जिन एंडा देहो, डाका दे धन मति लेहो ॥
मति दगड़ा लूटौ भाई, दौड़ाई है दुखदाई।
ठगविद्या त्यागो मित्रा, परधन है अति अपवित्रा ॥
काहूकूं द्यो मति तापा, छांड़ो तन मन वच पापा।
पासीगर सम नहिं पापी, पर प्राण हरै सतापी ॥
सो महानरकमें जावै, भव-भव में अति दुख पावै।
हाकिम ह्वै धनमति चोरौ, ले खूंक न्यावमति बोरौ ॥
लेखामें चूक न कारै, इहि नरभव मूढ़! न हारै।
ज्यों हरियो परको वित्ता, ते पापी दुष्ट जु चित्ता ॥
रुलिहै भव माहिं अनंता, जा परधन प्राण हरंता।
चुगली करि मति हि लुटावो, काहूकूं नाहिं कुटावौ ॥
परकी ईजति मति हरि हो, परको उपगार जु करिहो।
धन धान नारि पसु बाला, हरिये काहुके नहिं लाला ॥८०
काहूको मन नहिं हरिये, हिरदामें श्रीजिन धरिये।
तिर नर जीवनकी जीवी, मेटौ मति करुणा कीवी ॥
तुम शल्य न राखौ वीरा, करि शुद्ध चित्त गुणधीरा।
राका बांधी मति करिहो, काहूकी सौंपि न हरिहो ॥
बोलो मति दुष्ट जु वाके, तुमदोष गहो मति काके।
काहूको मर्म न छेदौ, काहूको छेत्र न भेदौ ॥

काहूकी कछू नहि वस्ता, मति हरहु होय शुभ अस्ता।
इह व्रत धारौ वर वीरा, पावौ भवसागर तीरा॥
जाकरि ह्वै कर्म विध्वस्ता, सो भाव धरौ परशस्ता।
तृण आदि रत्न परजंता, पर धन त्यागो बुधिवंता॥
हरिवौ रागादिक दोषा, करवौ कर्मनको सोषा।
धरि भर्म, धर्म धरि भाई, हूजे त्रिभुवनके राई॥
अपनो अर परको पापा, हरिये जिनवचन प्रतापा।
छांड़े जु अदत्ता दाना, करि अनुभव अमृत पाना॥
चोरी त्यागें शिव होई, चोरी लागे शठ सोई।
चोरीके दोय विभेदा, निश्चै व्यौहार विछेदा॥
निश्चै चोरी इह भाई, तजि आतम जड़ लवलाई।
पर परणति प्रणमन चोरी, छांड़े ते जिनमत धोरी॥
तजिकै पर परणति जीवा, त्यागौ सब भाव अजीवा।
यह देह आदिपर वस्ता, तिनसौं नहिं प्रीति प्रशस्ता॥६०
चिन चेतन जे परपंचा, तिनमें सुख ज्ञान न रंचा।
इनमें नहि अपनों कोई, अपनों निज चेतन होई॥
तातें सुनिके अध्यातम, छांड़ौ ममता सब आतम।
अपनो चेतन धन लेहो, परकी आसा तजि देहो॥
जे ममता पंथ न लागे, निश्चै चोरी ते त्यागे।
जब निश्चै चोरी छूटै, तब काल भूपाल न कूटै॥
इह निश्चै व्रत वखाना, या सम और न कोई जाना।
शिवपद दायक यह व्रत्ता, करिये भविजीव प्रवृत्ता॥

जिन त्यागी परकी ममत्ता, तिन पाई आतम सत्ता।
अब सुनि व्यवहार सरूपा, जो विधि जिनराज परूपा॥
इक देव जिनेसुर पूजौ, सेवौ मति जिन विन दूजौ।
बिनगुरु निरग्रन्थ दयाला, सेवौ मति औरहि लाला॥
सुनि श्रीजिनजूके ग्रन्था, मति सुनहु और अघपंथा।
मिथ्यात समान न चोरी—धारें तिनकी मति भोरी।
इह अंतर बाहिज त्यागें, तब व्रत विधान हिं लागें।
सम्यक है आतम भावा, मिथ्यात अशुद्ध विभावा॥
सम्यक निश्चै व्यवहारा, सो धारौ तजि उरझारा।
वर व्रत आचारज धारें, ते सर्व दोपकों टारें॥
या विन नहिं साधू गनिया, या विन नहिं श्रावक भनिया।
श्रावक मुनि द्वय विध धर्मा, यह व्रत दुहुनको मर्मा॥१००
मुनिके सब ममता छूटी, ममतातें दुरमति टूटी।
मुनि अवधि न एक धराही, काछु छाने नाहिं कराही॥
देहादिक सों नहिं नेहा, बरसै घट आनन्द मेहा।
मुनिके सब दोप जु नासे, तातें सु महाव्रत भासे॥
मुनिके कछु हरनों नाहीं, चित लागै चेतन माहीं।
श्रावकके भोजन लेई, नहिं स्वाद विषें चित देई॥
काम न क्रोध न छलमाना, नहिं लोभ महा बलवाना।
जे दोष छियालिस टालें, जिनवरकी आज्ञा पालें॥
ते मुनिवर ज्ञानसरूपा, शुभ पंच महाव्रत रूपा।
गृह पतिके कछु इक धंधा, कछु ममता मोह प्रबंधा॥

छानें कछु करनों आवे, तातें अणुव्रत कहावै।
कूपादिकको जल हरवौ, इह किंचित दोषहु धरवौ॥
मोटे सब त्यागें दोषा, काहूको हरय न कोषा।
त्यागौ परधनको हरवौ, छाड़ौ पापनिको करवौ॥
संक्षेप कही यह वाता, आगे जु सुनहु अब भ्राता।
इह अणुव्रतका जु सरूपा, जिनश्रुत अनुसार परूपा॥
अब अतीचार सुनि भाई, त्यागौ पंचहि दुखदाई।
है चोरीको जु प्रयोगा, सो पहलो दोष अजोगा॥
चोरीको माल जु लेनों, इह दूजो अब तजि देनों।
थोरे मोल बड़ वस्ता, लेवौ नहिं कबहुँ प्रशस्ता॥१०॥
राजाकों हासिल गोपै, राजाकी आणि जु लोपै।
इह तीजौ दोष निरूपा, त्यागौ व्रतधारी अनूपा॥
देवेके तोला घाटैं, लेवेके अधिका बाटैं।
इह अतिचार है चौथो, त्यागौ शुभ मतितें थोथो॥
अधि मोलमें घाटो मोला, भेले ह्वै पाप अतोला।
इह पंचम है अतिचारा, त्यागें जिन मारग धारा॥
ए अतीचार :गुरु भाखे, जैनो जीवनिनें नांखे।
चोरी करि दुरगति होई, चोरी त्यागें शुभ सोई॥
चोरी तजि अंजनचोरा, तिरियो भवसागर घोरा।
लहि महामंत्र तप गहिया, दावानल भववन दहिया॥
अंजन हूऔ जु निरंजन, इह कथा भव्य मनरंजन।
बहुरी नृप श्रेणिक पुत्रा, है वारिषेण जगमित्रा॥

कर परधनको परिहारा, पायौ भवसागर पारा।
चोरी करि तापस दुष्टा, पंचा गन साधनि पुष्टा॥
लहि कोटपालकी त्रासा, मरि नरक गयौ दुख भाषा।
दलिद्दरको मूल जु चोरी, चोरी तजि अर तजिजोरी॥
सब अघ तजि जिनसों जोरी, विनऊं भैया कर जोरी।
चोरी तजियां शिव पावै, यह महिमा श्रीजिन गावैं॥
चोरीतें भव भव भटकै, चोरीतें सब गुन सटकै।
जो बुधजन चोरी त्यागै, सो परमारथ पथ लागै॥२०॥

दोहा—परधनके परिहार विन, परम धाम नहिं होय।
भये पार ते तीसरे, व्रत विना नहिं कोय॥
जे बूढ़ नर नरकमें, गये निगोद अजान।
ते सब परधन हरणतें, और न कोई बखान॥
व्रत्त आचोरिज तीसरो, सब व्रत्तनिमें सार।
जो याकों धारै व्रती, सो उधरै संसार॥
याकी महिमा प्रभु कहैं, जो केवल गुणरूप।
पर गुणरहित निरंजना, निर्गुण निर्मल रूप॥
कहैं गणिंद मुनिन्दवर, करैं भव्य परमान।
जो धारैं ते पावही, पूरणपद निर्वाण॥
अल्पमती हम सारिखे, कहैं कौन विधि वीर।
नमस्कार या व्रत्तकों, धारैं धर्माधीर॥
जे उरझे ते या विना, इह निश्चै उर धारि।
जे सुरझे ते या करी, यह व्रत है अघहारि॥

दया सत्य सन्तोष अर, शीलरूप है एह ।
उधरै भवसागर थकी, धरै या थकी नेह ॥
दया सत्य अस्तेयकौं, करि बन्दन मनलाय ।
भाषों चौथो शीलव्रत जो इम विगर न थाय ॥

इति अचौर्याणुव्रत वर्णन ।

प्रणमि परम रस शाँतिकों, प्रणमि धरम गुरुदेव ।
वरणों सुजस सुशील को, करि सारदकी सेव ॥३०॥
शीलव्रतको नाम है, ब्रह्मचर्य सुखदाय ।
जाकरि चर्या ब्रह्ममें, भव वन भ्रमण नशाय ॥
ब्रह्म कहावें जीव सब, ब्रह्म कहावें सिद्ध ।
ब्रह्मरूप कैवल्य जो, ज्ञान महा परसिद्ध ॥
ब्रह्मचर्य सो व्रत ना, न परब्रह्म सो कोय ।
व्रती न ब्रह्म लवलीन सो, तिरै भवोदधि सोय ॥
विद्या ब्रह्म-विज्ञान सी, नहीं दूसरी जान ।
विज्ञ नहीं ब्रह्मज्ञ सो, इह निश्चै उर आन ॥
ब्रह्म वासना सारिखी, और न रसकी केलि ।
विषै वासना सारिखी, और न विषकी वेलि ॥
आतम अनुभव सक्तिसी और न अमृत बेलि ।
नहीं ज्ञान सो बलवता, देहि मोहकों ठेलि ॥
अव्रत नाहिं कुशील सो, नरक निगोद प्रदाय ।
नहा सील सो संजमा, भाषै श्रीजिनराय ॥

धर्म न श्रीजिनधर्म से, नहिं जिनवरसे देव।
गुरु नहिं मुनिवर सारिखे, रागीसे न कुदेव॥
कुगुरु न परिग्रहधारितै, हिंसासो न अधर्म।
भर्म न मिथ्या सूत्रसो, नहीं मोह सो कर्म॥
द्रव्य न कोई जीव सा, गुन न ज्ञान सो आन।
ज्ञान न केवल ज्ञान सो, जीव न सिद्ध समान॥ ४०॥
केवल दर्शन सारिखो, दर्शन और न कोई।
यथाख्यात चारित्र सो, चारित और न होई॥
नहिं विभाव मिथ्यातसो सम्यकसो नहिं भाव।
क्षायिकसो सम्यक नहीं, नहीं शुद्धसो भाव॥
साधु न क्षीण कषायसे, श्रणि न क्षपक समान।
नहिं चौदम गुण थानसो, और कोई गुणथान॥
नहिं केवल परतक्षसो, और कोई परमाण।
सुकल ध्यानसो ध्यान नहिं, जिनमतसो न बखाण॥
अनुभवसो अमृत नहीं, नहिं अमृतसो पान।
इन्द्री रसनासो नहीं, रस न शांतिसो आन॥
मन गुप्तिसी गुप्ति नहिं, चंचल मनसो नाहिं।
निश्चल मुनिसे और नहि, नहीं मौन मनमाहिं॥
मुनिसे नहि मतिवन्त नर, नहि चक्रीसे राव।
हलधर अर हरि सारिखो, हेतन कहूं लखाव॥
प्रतिहरिसे न हठा भये, हरिसे और न सूर।
हरसे तामस धार नहि, वहु विद्या भरपूर॥

नारदसे न भ्रमन्त नर, भ्रमैं अढ़ाई दीप।
कामदेवसे सुन्दर नर नहिं, जिनसे जगदीप ॥
जिन-जननी जिनजनकसे, और न गुरुजन जानि।
मिष्ट न जिनवानी समा, यह निश्चै परमान ॥५०॥
जिनमूरतिसी मूरति न, परमानन्द सरूप।
जिनसूरतिसी सूरति न, जासम और न रूप ॥
जिनमंदिरसे मंदिर नहीं जिन तनसा न सुगंध।
जिनविभूतिसी भूति नहीं जिन सुतिसो न प्रबंध ॥
जिनवरसे न महाबली, जिनवरसे न उदार।
जिनवरसे न मनोहरा, जिनसे और न सार ॥
चरचा जिनचरचा समा, और न जगमें कोई।
अरचा जिन अर्चा समा, नहीं दूसरी होइ ॥
राज न श्रीजिनराजसे, जिनके राग न रोस।
ईति भीति नहि राजमें, नहीं अठारा दोस ॥
सेवैं इन्द नरिन्द सब, भजहि फणीस मुनीस।
रटैं सूर ससि सुर सबै, जिनसम और न ईस ॥
अर्चैं सहमिन्द्रा महा, अरचैं चतुर सुजान।
हरिहर प्रतिहरि हलि मदन, पूजें चक्रिपुमान ॥
गुरुकुल कर नारद सवै, सेवें तन मन लाय।
जगमें श्रीजिनरायसा, पूज्य न कोई लखाय ॥
तीर्थङ्कर पद सारिखा, और न पद जग माहिं।
वज्रवृषभनाराचसो, संहनन कोइ नाहिं ॥

समचतुरजसंठानसो, और नहीं संठाण।
पुरुष सलाका सारिखा, और न कोई जाण ॥६०॥
चक्रायुध हलआयुधा, जे हैं चर्मसरीर।
ते तीर्थङ्कर तुल्य हैं, कुसमायुध सब धीर ॥
और हु चर्मसरीर धर, तदभव मुक्ति मुनीस।
ते जिननाथ समान हैं, नमें सुरासुर सीस ॥
नहीं सिद्ध पर्य्यायसी, नहीं और पर्याय।
नहीं केवलीकायसी, और दूसरी काय ॥
अर्हत सिध साधू सबै, केवलि भासित धर्म।
इन चउसे नहिं मंगला, उत्तम और न पर्म ॥
इन चउसरणन सारिखे, सरण नहिं जगमाहिं।
संघ न चउविधि संघसे जिनके संसय नाहि ॥
चोर न इन्द्री-चित्तसे, मुसे धर्मधन भूरि।
चारित्तसे नहिं तलवरा, डारैं चारनि चूरि ॥
जैसें ए उपमा कहीं, तैसें शील समान।
व्रत्त न कोई दूसरो, भापें श्री भगवान ॥
वक्ता सर्वगसे नहीं, श्रोता गणधरसे न।
कथन न आतम ज्ञानसों, साधक साधू जिसे न ॥
बाधक नहि रागादिसे, तिनहिं तजें जे गिन्द।
नहिं साधन समभावसे, धारें धीर मुनिन्द ॥
पाप नहीं परद्रोहसो, त्यागें सज्जन सन्त।
पुन्य न पर उपगारसो, धारें नर मतिवन्त ॥७०॥

लेश्या शुकल समान नहिं, जामें उज्जल भाव।
उज्वलता न कषाय सी, और न कोई लखाव ॥
दया प्रकाशक जगतमें, नहीं जैन सो कोइ।
पर्म धर्म नहिं दूसरो, दया सारिखो होइ ॥
कारण निज कल्याणको, करुणा तुल्य न जानि।
कारण जिन विश्वासको, नहीं सत्यसो मानि ॥
सत्यारथ जिनसूत्रसो, और न कोइ प्रवानि।
सर्व सिद्धिको मूल है, सत्य हियेमें आनि ॥
नहिं अचौर्यव्रत सारिखो, भै हरि भ्रांति निवार।
नहिं जिनेन्द्र मत सारिखौ, चोरी बरज उदार ॥
नहीं सीलसो लोकमें, है दूजो अविकार।
कारण शुद्ध स्वभावको, भवजलतारण हार ॥
नहिं जिनसासन सारिखौ, शील प्रकाशन हार।
या ससार असारमें, जा सम और न सार ॥
नहिं सन्तोष समान है, सुखको मूल अनूप।
नहीं जिनेसुर धर्मसों, वर सन्तोष स्वरूप ॥
कोमल परिणामानिसो, करुणाकारक नाहि।
नहिं कठोर भावानिसो, दयारहित जग मांहि ॥
नहि निरलोभ स्वभावसो, सत्य मूल है कोइ।
नहीं लोभसो लोकमें, कारण मिथ्या होइ ॥८०॥
मूल अचोरिज व्रत्तको, निसप्रहतासो नाहि।
चोरी मूल प्रपंचसों, नहीं लोकके मांहि ॥

राजवृद्धिको कारणा, नहीं नीतिसो जानि।
नाहिं अनीति प्रचारसो, राजविघन परवानि॥
कारण संजम शीलको, नहिं विवेकसो मानि।
नहि अविवेक विकारसो, मूल कुशील बखानि॥
मूल परिग्रह त्यागको, नहि वैराग समान।
परिग्रह संग्रह कारणा, तृष्णा तुल्य न आन॥
करुणानिधि न जिनेन्द्रसो, जगतमित्र है सोय।
नहिं क्रोधीसो निरदई, सर्वनाशको होय॥
सतवादी सर्वज्ञ से, नहीं लोकमें कोइ।
कामी लोभीसे नहीं, लापर और न होइ॥
सम्यकदृष्टी जीवसो, और बिसन मदमोर।
मिथ्यादृष्टी जीवसो, और न परधन चोर॥
समताभाव न सत्यसो, शीलवन्त नहीं धीर।
लम्पट परिणामी जिसो, नाहि कुशीली वीर॥
निसप्रेही निरदुन्दसो, परिग्रह त्यागी नाहिं।
तृष्णातन्त असन्तसो, परिग्रहवन्त न कांहिं॥
दारिदभंजन जस करण, कारण सम्पति कोइ।
नहीं दानसो दूसरो, सुरग मुक्ति दे सोइ॥६०॥
चउ दाननसे दान नहिं, औषध और आहार।
अभयदान अर ज्ञानको, दान कहें गणसार॥
रागादिक परिहारसो, और न त्याग बखान।
त्याग समान न सूरता, इह निश्चै परवान॥

तप समान नहिं और है, द्वादश माहिं निधान।
नहीं ध्यानसो दूसरो, भाषें श्रीभगवान॥
ध्यान नहीं निज ध्यानसो, जो कैवल्य शरीर।
जा प्रमाद भवरूप मिटि, जीव होय चिद्रूप॥
क्षीणमोहसे लोकमें, ध्यानी और न जानि।
कारण आतमध्यानको, मन निश्चलता मानि॥
कारण मन वशिकरणको, नहीं जोगसो और।
जोग न निज संजोगसो, है सबको सिरमौर॥
भोग न निज रस भोगसो, जामें नाहिं बिजोग।
रोग न इन्द्री भोगसो, इह भाषें भवि लोग॥
शोक न चिन्ता सारिखौ, विकलरूप बड़रूप।
नहिं संसय अज्ञानसो, लखौ न चेतन रूप॥
विकलप जाल प्रत्यागसो, और नहीं वैराग।
वीतरागसे जगतमें, और नहीं बड़भाग॥
छती संपदा चक्रिकी, जो त्यागै मतिवन्त।
ता सम त्यागी और नहिं, भाषें श्रीभगवन्त॥१००॥
चाहे अछति भूतिकों, करै कल्पना मूढ़।
ता सम रागी और नहि, सो सठ विषयारूढ़॥
नव जोवनमें ब्याह तजि, बालब्रह्म व्रत लेय।
ता सम वैरागी नहीं, सो भवपार लहेय॥
कंटक नहि क्रोधादिसे, चढ़ि जु रहे गिरमान।
मुनिवरसे जोधा नही, शस्त्र न कुशल समान॥

भाव समान न भेष है, भाव समान न सेव।
भाव समान न लिंग है, भाव समान न देव॥
ममता-माया रहितसो, उत्तम और न भाव।
सोई सुध कहिये महा, वर्जित सकल विभाव॥
कारण आतम ध्यानको, भगवत भक्ति समान।
और नहीं संसारमें, इह .धारो मतिवान॥
विघन हरण मंगल करन, जप सम और न जानि।
जप नहिं अजपाजापसो, इह श्रद्धा उर आनि॥
कारण राग विरोधको, भाव अशुद्ध जिसौन।
कारण समता भावको, निरछिर भाव तिसौन॥
कारण भववन भ्रमणके, नहि रागादि समान।
कारण शिवपुर गमनको, नहीं ज्ञानसो आन॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान व्रत, ए रतनत्रय जानि।
इनसे रतन न लोकमें, ए शिवदायक मानि॥ १०॥
निज अवलोकन दर्शना, निज जानें सो ज्ञान॥
निज स्वरूपको आचरण, सो चारित्र निधान॥
निज गुण निश्चय रतन ये, कहे अभेदस्वरूप।
विवहारै नव तत्वकी, श्रद्धा अविचल रूप॥
तत्वारथ श्रद्धान सो, सम्यग्दर्शन जानि।
नव पदार्थको जानिबौ, सम्यग्ज्ञान बखानि॥
विषयकषाय व्यतीत जो सो विवहार चरित्र।
ए रतनत्रय भेद हैं, इनसे और न मित्र॥

देव जिनेसुर गुरू जती धर्म अहिंसा रूप।
इह सम्यक व्यवहार है, निश्चय निज चिद्रूप॥
नहिं निश्चय व्यवहारसी, सरधा जगमैं कोइ।
ज्ञान भक्ति दातार ये जिन भाषित नय दोइ॥
भक्ति न भगवत भक्तिसी, नहिं आतमसो बोध।
रोध न चित्तनिरोध सो, दुरनयसो न विरोध॥
दुर्मतसी नहिं साकिनी, हरै ज्ञान सो प्रान।
नमोकार सो मंत्र नहिं, दुरमति हरै निधान॥
नहिं समाधि निरूपाधिसी, नहिं तृष्णासी व्याधि।
तंत्र न परम समाधिसो, हरै सकल असमाधि॥
भवयंत्र जु भयदायको तासम विघन न कोय।
सिद्ध यंत्र सो सिद्धकर, और न जगमें होय॥ २०॥
सिद्धक्षेत्रसो क्षेत्र नहिं, सर्व लोकके सीस।
यात्री जतिवरसे नहीं, पहुंचे तहां मुनीस॥
षोड़सकारण सारिखा और न कारण कोय।
तीर्थंश्वर भगवंतसा, और न कारज होय॥
नाहीं दर्शन शुद्धिसा, षोड़स माहीं जान।
केवल रिद्धि बराबरी, और न रिद्धि बखान॥
नहिं लक्खण उपयोगसे, आतमतें जु अभेद।
नाहिं कुलक्खण कुबुधिसे, करै धर्मको छेद॥
धर्म अहिंसा रूपके भेद अनेक बखान।
नहिं दशलक्षण धर्मसे, जगमें और विधान॥

क्षमाउत्तमा सारिखो और दूसरो नाहिं।
दशलक्षणमें मुख्य है, क्रोधहरण जग मांहि ॥
नीर न शांति स्वभावसो, अगनि न कोप समान।
मान समान न नीचता, नहिं कठोरता आन ॥
मानीको मन लोकमें, पाहन तुल्य बखान।
मान समान अज्ञान नहीं, भाखें श्रीभगवान ॥
नि गरव भाव समानसो, मद नहिं जगमें और।
हरै समस्त कठोरता, है सबको सिरमौर ॥
कीच न कपट समान सो, वक्र न कपट समान।
सरल भावसो उज्ज्वल, न सुधौ कोई न आन ॥ ३० ॥
आपद लोभ समान नहिं, लोभ समान न लाय।
लोभ समान न खाड़ है, दुख औगुन समुदाय ॥
नहिं संतोष समान धन, ता सम सुखो न कोय।
नहिं ता सम अमृत महा, निर्मल गुण है सोय ॥
शुभ नहिं निर्मल भावसो, जहां न सशुभ सुभाव।
नही मलीन परिणामसों, दूजौ कोई कुभाव ॥
सन्देह न अयथार्थसों, जाकरि भर्म न जाय।
नहीं जथार्थ सो लोकमें, निस्सन्देह कहाय ॥
नाहिं कलंक कषाय सो, भाषें श्रीभगवन्त।
निःकलंक अकषायसे, करै कर्मको अन्त ॥
शुचि नहिं मनशुचि सारिखी, करै जीवको शुद्ध।
अशुचि नहीं मन अशुचिसी इह भाषें प्रतिबुद्ध ॥

नहीं असंजम सारिखौ, जगत डुबावन हार ।
नहीं संजमसो लोकमें, ज्ञान बढ़ावन हार ॥
बंचक नहिं परपंचसे ठगें सकलको सोइ ।
विषै बांछना सारिखी, नाहिं ठगौरी कोइ ॥
नहिं त्रिलोकमें दूसरो, तपसो ताप १निवार ।
त्रिविध तापसे ताप नहीं, जराजन्म मृतिधार२ ॥
इच्छासी न अपूरणा, पूरी होइ न सोइ ।
नहिं इच्छा जु निरोधसी, तपस्या दूजा होय ॥ ४० ॥
त्याग समान न दूसरो, जग जंजाल निवार ।
नहीं भोग अनुरागसो, नरकादिक दातार ॥
नहीं अकिञ्चन सारिखौ, निरभय लोक मंझार ।
नर परिगरही सारिखौ, भैरूप न निरधार ॥
परिग्रहसो नहिं पापगृह, नहिं कुशीलसो काद ३ ।
ब्रह्मचर्यसो और नहीं, ब्रह्मज्ञानको बाद ॥
नहीं विषैरस सारिखौ, नीरस त्रिभुवन मांहि ।
अनुभवरस आस्वादसो, सरल लोकमें नाहिं ॥
अदयासी नहीं दुष्टता, अनृतसो न प्रपंच ।
छल नहीं चोरी सारिखौ, चोर समान न टंच ॥
हिंसकसो नहीं दुर्जना, हरै पराये प्राण ।
नहीं दयालसो सज्जना, पीरा हरै सुजाण ॥
नहीं विश्वासघाती अवर, झूंठे नरसो कोय ।

---

१ दुःख । २ मृत्यु । ३ कीचड़ ।

नहीं भवचारीसो अना,—चारी जगमें होय ॥
विकथासों न प्रलाप है, आरतिसों न विलाप ।
थाप न द्रव्य नय थापसों, जिनवरसों न प्रताप ॥
सन्ताप न कोसोकसों, लोक न सिद्ध १ समान ।
धन प्राणनके नाशसों और न शोक बखान ॥
जड़जिय २ सों अमलाप नहीं, गुणमणिसों न मिलाप ।
श्रीजिनवर गुणगानसों, और न कोई अलाप ॥५०॥
नहिं विकथा नारिनिसों, कथा न धर्म समान ।
नहीं आरति भोगाभिसी, दुरगतदाई आन ॥
ओंकार समान नहीं, सर्व शास्त्रकी आदि ।
महा मंगलाचार है, यह उपचार अनादि ॥
नाद न सोऽहं सारिखो, नहीं स्वरस३सो स्वाद ।
स्याद्वाद सिद्धान्तसो, और नहीं अविवाद ॥
एक एक नय पक्षसो, और न कोई स्वाद ।
नाहिं विषाद विवादसो, निद्रासो न प्रमाद ॥
सत्यानगृद्धिनिद्रा जिसी, निद्रा निंद्य न और ।
परनिंदासो दोष नहिं, भाषें जिन जगमौर ॥
निन्दा चउविधि संघकी, ता सम अघ नहिं कोय ।
नाहिं मुनिसे अध्यातमी, सर्व विषय प्रतिकूल ॥
विषय कषाय बराबरी, वैरी जियके नाहिं ।
ज्ञान विराग विवेकसे, हितू नहिं जग माहिं ॥

१ मोक्ष । २ मूर्ख । ३ आत्मरस ।

नहीं रसातल सारिखौ, नीचः जगमें जोय ॥
जिनमतइन्द्री१ धीरसे, और न वंद्य२ वखानि ।
विषयी विकलनि सारिखे, और न निंद्य प्रवानि ॥७०॥
नहिं अरिष्ट अघकर्मसे, शिष्ट न शुभग समान ।
नाहिं पञ्चपरमेष्टिसे, और इष्ट परवान ॥
जिमदेवल३से देवल न, नहीं जैनसे बिम्ब ।
केवलसो ज्ञायक नहीं, जामें सब प्रतिबिम्ब ॥
नाहिं अकर्तम सारिखे, देवल अतिसंरूप ।
चैत्यवृक्षसे वृक्ष नहिं, सुरतरुसें हु अनूप ॥
जोगी जिनवरसे नहीं, जिनकी अचल समाधि ।
निजरस भोगी ते सही वर्जित सकल उपाधि ॥
इन्द्रिय भोगी इन्द्रसे, नाहिं दूसरे जानि ।
इन्द्री जीत मुनिन्द्रसे, इन्द्रनरेन्द्रनि मानि ॥
राग दोष परपञ्चसे, असुर और नहिं होय ।
दर्शन-ज्ञान चरित्रसे, असुर नाशक न कोय ॥
काम-क्रोध-लोभादिसे, नाहिं पिशाच वखानिं ।
सम संतोष विवेकसे, मन्त्राधीश न मानि ॥
माया मच्छर४ मानसे, दुखकारी नहिं वीर ।
निगरव निकपटभावसे, सुखकारी नहिं धीर ॥
मैल न कोइ मिथ्यातसो, लग्यौ अनादि विरूप ।
साबुन भेदविज्ञानसो, और उज्वलरूप ॥

१ इन्द्रियोंको जीतनेवाले । २ वन्दना । ३ मन्दिर । ४ मत्सर ।

मदन-दर्पसो सर्प नहिं, डसै देव नर नाग१ ।
गरुड़ न कोई शीलसों, मदनजीत२ बड़भाग ॥८०॥
मल न मोहासुर समा, सकलकर्मको राय ।
महामल्ल नहिं बोध सा, हरै मोह परभाव ॥
मर्म न कोई कर्मसे कारण संसे जानि ।
भूमहारी सम्यक्तसे, और न कोई मानि ॥
विष नहिं विषयानन्दसे, देहि अनन्ता मर्ण ।
सुधा न ब्रह्मानन्द सों, अनुभव रूप अवर्ण ॥
क्रूर न क्रोधी सारिखे, नहीं क्षमीसे शांत ।
नीच न मानी सारिखे, नि गरवसे न महांत ॥
मायावी सा मलिन नहिं विमल न सरल समान ।
चिन्तातुर लोभीन से, दीन न दुखी अयान ॥
दुष्ट न दोषी सारिखे, रागिसे नहिं अन्ध ।
अहंकार समकार सों, और न कोई बन्ध ॥
मोहीसे नहिं लोकमें, बहलरूप मतिहीन ।
कामातुर से आतुर न, अविवेकी अघलीन ॥
ऋण नहिं आस्रव-बंधसे, राखै भवमें रोकि ।
मुनिवरसे मतिवन्त नहिं, छूटैं ब्रह्म विलोकि ॥
संवर निर्जर सारिखे, रिणमोचन नहिं कोइ ।
दुर्जर कर्म हरैं महा, मुक्तिदायका सोइ ॥

---

१ सर्प । २ कामदेव ।

विपति न वांछा सारिखी, वांछा रहित मुनीस ।
मृगतृष्णा मिथ्या जगो, और कहैं रिपीस ॥ ६० ॥
ममतासी संसारमें साता कोइ न जानि ।
मातासी न सुहावणी, इह निश्चै उर आनि ॥
ममतासी मानों भया, और असाता नाहिं ।
नाहिं असाता सारिखी, है अनिष्ट जगमाहिं ॥
उदासीनता सारिखी ममताकरण न कोय ।
जग अनुराग समानता, समता भूल न जोय ॥
नाहिं भोग अभिलाषनी, भूख अपूरण वीर ।
नाहिं भोग-वैरागसी, पूरणता है धीर ॥
नाहीं विषयासक्तिसी, त्रिषा त्रिलोकी माहिं ।
विरकततासो विश्वमें, और तृषाहर नाहिं ॥
पराधीनता सारिखी, नहीं दीनता कोइ ।
नहिं कोई स्वाधीनता,—तुल्य उच्चता होइ ॥
नाहीं समरसीभावसी समता त्रिभुवन माहिं ।
पक्षपात बकवादसी और न विकथा नाहिं ॥
जगत कामना कलपना,—तुल्य कालिमा नाहिं ।
नहीं चेतना सारिखी, ज्ञायक त्रिभुवन माहिं ॥
ज्ञान चेतना सारिखी, नहीं चेतना शुद्ध ।
कर्म कर्मफल चेतना, ता सम नाहिं अशुद्ध ॥
नर निरलोभी सारिखे, नाहिं पवित्र वखान ।
संतोषीसे नहिं सुखी, इह निश्चं परवान ॥ १०० ॥

निरमोही अर निरममत, ता सम संत न कोय।
निरदोषी निरवैर से, साधू और न कोय॥
दोष समान न मोपहर, राग समान न पासि।
मोह समान न बोधहर, ये तीनू दुखरासि॥
व्रती न कोइ निसल्यसो, माया तुल्य न शल्य।
हीन न जाचिक सारिखौ, त्यागीसे न अतुल्य॥
कामीसे न कलंकधी, काम समान न दोष।
परदारा परद्रव्य सो, और न अघको कोष॥
सल्य समान न है सली, चुभी हियेके माहि।
नहिं निरदोय स्वभाव सो, मूढ़ा और कहाहिं (?)
शोच न संग समान है, सङ्ग न अङ्ग समान।
अङ्ग नहीं द्वय अङ्गसे, तिनहिं तजै निरवान॥
कारमाण अर तैजसा, ए द्वय देह अनादि।
लगे जीवके जगतमें, रोग महा रागादि॥
गेह समान न दूसरो, जानूं कारागेह।
देह समान न गेह है, त्यागौ देह-सनेह॥
ए काया नहिं जीवकी, सो है ज्ञान शरीर।
मृत्यु न ज्ञान शरीरको, नहीं रोगको पीर॥
नाहीं इष्ट वियोग सो, सोग मूल है कोइ।
काया माया सारिखौ, इष्ट न जगके जोइ॥ १० ॥
नहिं संकल्प विकल्प सो, जाल दूसरो जानि।
नहिं निरविकलप ध्यानसो छेदक जाल बखानि॥

नहीं एकता सारिखी, परम समाधि स्वरूप।
नहीं विषमतासी अवर, सठता रूप विरूप ॥
चिन्ता सी असमाधि नहिं, नहिं तृष्णासी व्याधि।
नहीं ममता-सी मोहनी, माया सी नवपाधि ॥
ज्ञानानंदादिक महा, निज स्वभाव निरदाव।
तिनमें तन्मय भाव जो, सो एकत्व महाव ॥
आशासी न पिशाचिनी, आसासी न असार।
नहीं जाचना सारिखी, लघुता जगत मंझार ॥
दान कलासी दूसरी, दुख हरणी नहिं कोइ।
ज्ञान कलासो जगतमें, सुखकारी नहिं होइ ॥
नहिं क्षुधासी वेदना, व्यापै सबकों सोइ।
अन्न-पान दातारसे, दाता और न होइ ॥
पर दुखहरणी सारिखी, गुरुता और न जानि।
पर पीड़ा करणी समा, खलता कोइ न मानि ॥
शुद्ध पारणामिक समा, और नाहिं परिणाम।
सकल कामना त्याग सो, और न उत्तम काम।
धर्म सनेही सारिखा, नाहिं सनेही होइ ॥
विषै सनेही सारिखा, और कुमित्र न कोइ ॥ २० ॥
सर्व वासना त्यागसी, और न थिरता वीर।
कष्ट न नरक निगोदसे, नहीं मरणसी पीर ॥
राज-काज अभ्यास सो, और न दुरगतिदाय।
जोगाभ्यास अभ्याससो, और न रिद्धि उपाय ॥

नहिं विराधना सारखी, बाधाकरण कहाहिं।
आराधनसी दूसरी, भव बाधाहर नाहि॥
निज सरूप आराधना, अचल समाधि स्वरूप।
ता सम शिवसाधन नहीं, यह भाषैं जिनभूप॥
निज सत्तासी निश्चला, और न मानो मित्त।
आधि-व्याधि तें रहित जो, ध्यावौ निचित्त॥
निज सत्ताको भूलि जे, राचें माया माहिं।
धरि धरि काया ते भ्रमें, यामें संसै नाहिं॥
मुनिव्रत तजि भवभोगकों, चाहें जे मतिमंद।
तिनसे मूढ़ न लोकमें, इह भाषें जिनचंद॥
वृद्ध भये हू गेहकों, जे न तजे मति हीन।
तिनसे गृद्ध न जगतमें, कापुरुषा न मलीन॥
गेह तजें नववर्षके, धरें महाव्रत सार।
तिनसे पूज्य न लोकमें, ते गुणवृद्ध अपार॥
नहिं वैरागी जीवसे, निरबंधन निरुपाधि।
नहीं जु रोगी सारिखे धारक आधि रु व्याधि॥ ३० ॥
निजरस आस्वादन विमुख, भुगतें इन्द्रीभोग।
नरक वासना ते लहैं, तिनसे नाहिं अजोग॥
अभविनिसे न अभागिया, भव्यनिसे न सभाग।
निकट भव्यसे भव्य नहिं, गहैं ज्ञान वैराग॥
नहि दरिद्र दुरबुद्धि सो, दलदर सो न दुकाल।
नहिं संपति सनमति जिसी, नहीं मोहसो जाल।

नहीं समीसे संयमी, व्रतसा नहीं विधान।
नहिं प्रधान निजबोध सो, निज निधिसो न निधान ॥
कोष न गुण भंडारसो, सदा अटूट अपार।
औगुनसो नहिं गुण हरा, भवभव दुखदातार ॥
खल स्वभावसो औगुन, न गुण न सुजनता तुल्य।
सत्य पुरुष निरवैरसे, जिनके एक न शल्य ॥
खलजन दुरजन सारिखे और दूसरे नाहिं।
भव वन सो वन नाहिं कौ भ्रमै मूढ़ जा माहिं ॥
विष वृक्ष न वसु कर्मसे, नानाफल दुखदाय।
बेलि न मायाजालसो, जगजन जहां फसाय ॥
दुरनयपक्षी सारिखे, नाहिं कुपक्षी आन।
दैत्य न निरदयभावसे, तिमर न मोह समान ॥
मद उनमाद गयंदसो, और न वनगज कोइ।
क्रूरभावसो सिंह नहिं, ठग न मदनसो होइ ॥ ४० ॥
नहिं अजगर अज्ञानसो, ग्रसै जगतको जोइ।
नहि रक्षक निजध्यानसो, काल हरण है सोइ ॥
थिर चरसे (?)नहिं वनचरा, बसे सदा भवमाहिं।
नहिं कंटक क्रोधादिसे, दया तिनूमें नाहिं ॥
विष पहुप न विषयादिसे, रहे कुवासन पूरि।
नाहिं कुपुत्र कुसुत्रसे, ते या वनमें भूरि ॥
पंथ न पावें जगतमें, भ्रकृति तनों जग जंत।
कोइक पावै ज्ञान निज, सोई लहै भव अंत ॥

नहिं सेरी जिनवानिसो, दूरसक गुरुसे नाहिं।
नगर नहीं निरवाण सो, जहां संतही जाहिं॥
नहिं समुद्र संसारसो, अति गम्भीर अपार।
लहर न त्रिषै तरंगसी मच्छ न जमसा भार।
भ्रमण न चहुंगति भ्रमणसो, भरमें जीव अपार।
पौन न मुनिव्रतसो महा, करै भवोदधि पार॥
द्वीप नहीं शिवद्वीपसो, गुन रतननकी रासि।
तीरथनाथ जिनंदसे, सारथवाह न भासि॥
अंधकूप नहिं जगतसो, परै तहां तनधार।
जिन विन काढ़े कौन जन, करिकै करुणा सार॥
नाहिं भवानल सारिखा, दावानल जग माहिं।
जगतचराचर भस्म कर, यामें संशय नाहि॥५०॥
जिनगुण अंबुधि शरण ले, ताहि न याको ताप।
तातें सकल विलाप तजि, सेवौ आप निपाप॥
नहीं वायु जगवायुसी, जगत उड़ावै जाय।
काय टापरी वापरी, यापै टिकै न कोय॥
जिनपद परवत आसरा, जो नर पकरै आय।
सोई यामें ऊबरै, और न कोइ उपाय॥
नाहि अतिन्द्री सुक्खसो, पूरण परमानन्द।
नाहि अफन्द मुनिन्द्रसो, आनन्दी निरदुन्द॥
नहि दीक्षा दुखहारिणी, जिनदीक्षासी कोय।
नहि शिक्षा सुख कारिणी, जिनशिक्षासी होय॥

चाल जोगीरासा।

फंद न कनककामिनी सरिखा, मृग नहिं मूरख नरसा।
नाहिं अहेरी काम लोभसा, सूर न अंध सु नरसा॥
काटत फन्द न बोधब्रत्तसा, मन्दमती न अभविसा।
बुद्धिवंत नहिं भव्यजीवसा, भव्य न तदभव शिवसा॥
पुरुष सलाका महाभागसे, तथा चरम तन धरसे।
और न जानों पुरुष प्रवीना, गुरु नहिं तीर्थंकरसे॥
ते पहली भाषें गुणवंता, अब सुनि देवस्वरूपा।
इन्द्र तथा अहिमिन्द्र सरीखे, और न देव. अनूपा॥
इन्द्र न षट इन्द्रनिसे कोई, सौधर्म सनतकुमार।
ब्रह्मेन्द्र जु अर लान्तव इन्द्रा, आनत आरण सारा॥
ए एका भवतारी भाई, नर ह्वै शिवपुर लेवें।
सम्यकदृष्टी इन्द सबै ही, श्रीजिनमारग सेवें॥
लोकपालहू सम्यकदृष्टी इकभव धरि भवपारा।
इन्द्र सारिखे सुर ये सोहैं, इनसे देव न सारा॥
देवरिषी लौकांतिक देवा, तिनसे इन्द्रहु नाहीं।
ब्रह्मचर्य धारत ए देवा, इनसे भुवन न माहीं॥
तप कल्याणक समये सेवा,—करें जिनेसुर कीये।
नर ह्वै पावें पद निरवाना, राखें जिनमत हीये॥
इन्द्राणीसी देवी नहीं, इन्द्राणी न शचीसी।
इक भव धरि पावै सुखवासा, तीर्थंकर जननीसी॥६०॥

सेवक देव जिनेसुरजूके, नाहि सुरेसुर तुल्या।
शची सारिखी भक्त न कोई, धारे भाव अतुल्या॥
कल्याणक ए पांचू पूजैं, शची शक्र जिनदासा।
अहनिशि जिनवर चरचा इनके, धारें अतुल विलासा॥

दोहा—अब सुनि अहमिंद्रा महा, स्वर्ग ऊपरें जेहि।
नव ग्रीवक नव अनुदिसा, पंचानुत्तर लेहि॥
तेईसों शुभ थान ए, तिनमें चौदा सार।
नव अनुदिश पंचोत्तरा, ये पावें भवपार॥
सम्यकदृष्टी देव ए, चौदहथान निवास।
चौदहमें नहि पंच से, महा सुखनकी रास॥
पंचनिमें सरवारथी,—सिद्ध नाम है थान।
सकल स्वर्गको शीस जो, ता सम लोक न आन॥
एकाभवतारी महा, सरवारथसिधि वास।
तिनसे देव न इन्द्र कोउ, अहमिद्रा न प्रकाश॥
कहं देवमें सार ए, तैसे व्रतमें सार।
शील समान न गुरु कहैं, शील देय भवपार॥
देव माहि जे समकिती, देव देव हैं जेहि।
देव माहिं मिथ्या मता, पशुतें मूरख तेहि॥
नारकमें जे समकिती, तिनसे देव न जांनि।
तिरजंचनिमें श्राविका, तिनसे मिनष न मानि॥
मिनपनमें जे अव्रती, अज्ञानी मतिमन्द।
तिनसे तिरजंचा नहीं, सेवें विषय सुछन्द॥७०॥

भिनपनि माहिं मुनिन्द्रजे, महाव्रती गुणवान ।
तिनसे अहमिन्द्रा नहीं, ताको सुनहु बखान ॥
थावर नहि कृमिकीटसे, ते सकलिन्द्रीसे न ।
पंचेन्द्री नहिं नरनसे, नर जु नरेन्द्र जिसे न ॥
महामंडलिकसेन नृप, ते अधचक्री सेन ।
अधचक्री नहिं चक्रिसे, ज्ञानवान गण सेन ॥
नाहिं गणेन्द्र जिनेन्द्रसे, जे सबके गुरुदेव ।
इन्द्र फणिन्द्र नरेन्द्र मुनि, करें सुरासुर सेव ॥
ते जिनेन्द्र हू वप समै, करें सिद्धक ध्यान ।
सिद्धनिसो संसारमें, नाहिं दूसरो आन ॥
सिद्धनिसो यह आतमा, निश्चय नय करि होय ।
सिद्धलोक दायक महा, नहीं शीलसो कोय ॥
भूमि न अष्टम भूमिसी, सर्व भूमिके शीश ।
कर्म भूमितें पावही, अष्टम भूमि मुनीश ॥
दीप अढ़ाईसे नहीं, असख्यात ही द्वीप ।
जहां ऊपजे जिनवरा, तीन भुवनके दीप ॥
नहिं जिन प्रतिमा सारिखी कारण वर वैराग ।
नहीं आन मूरति जिसी, कारण दोप रु राग ॥
नहिं अनादि प्रतिमा समा, सुन्दर रूप अपार ।
नाहिं अकतेम सारिखे, चैत्यालक विस्तार ॥८०॥
क्षेत्र न आरिज सारिखे, सिद्ध क्षेत्र है सोइ ।
भरतैरावत दस सबै, नहि विदेहसे कोइ ॥

गिरि नहिं सुरगिरि सारिखे, तरु सुर तरुसे नाहिं ।
नदी सुरनदीसी नहीं, सर्व नदीके मांहि ॥
शिला न पांडुकशिलासमा, जा परि न्हावै ईश ।
सिद्ध शिलासी पांडु नहीं, स त्रिभुवनके शीश ॥
उदधि न क्षीरोदधि समा, द्रह पद्मादि जिसे न ।
मणि नहि चिन्तामणि समा, कामधेनुसी धेनु ॥
निधि नहीं नवनिधि सारिखी, सो जिननिधिसी नांहि ।
नहीं समुद्र गुण सिन्धुसा, है जिन निधि जा मांहि ॥
नन्दनादिसे वन नहीं, ते निज वनसे नांहि ।
निज वनमें क्रीडा करें, ते आनन्द लहांहि ॥
केवल परिणति सारिखी, नदी कल्लोलनि कोइ ।
निजगंगा सांई गनों, ता सम और न होइ ॥
देव न आतम देवसो, गुण आतमसो नाहिं ।
धर्म न आतम धर्मसो, गुन अनंतजा माहिं ॥
बाजा दुन्दुभि सारिखा, नहीं जगतमें और ।
राजा जिनवरसो नहीं, तीन भुवन सिरमौर ॥
नाहिं अनाहत तूरसे, देव दुन्दुभी तूर ।
सुरन तिनसे जे नरा, डारें मन मथ चूर ॥६०॥
वाहन नहीं विमानसे, फिरें गगनके माहिं ।
नाहिं विमान सुज्ञानसे जाकरि शिवपुर जाहिं ॥
हीन दीन अति तुच्छ तन, नहिं निगोदिया तुल्य ।
सरवारथसिधि देवसे, भववासी नहिं कुल्य ॥

दीरघ देह न मच्छसे, सरसर जोजन देह।
चौइन्द्री नहिं भ्रमरसे, जोजन एक गनेह ॥
कानखजुरासे नहीं, ते इन्द्री त्रय कोस।
बेइन्द्री नहिं संखसे, तन अड़तालीस कोस ॥
एकेन्द्री नहिं कमलसे, सहसर जोजन एक।
सब परि करुणा राखियो, इह निज धर्म विवेक ॥
धात न कनक समानसी, कोई लगे न जाहि।
सोहु न चेतन धातसो, चहिं कबहूं जिनमाहि ॥
पारससे पाषाण नहिं, लोहा कनक कराय।
पारसनाथ समान कोऊ, पारस नाहिं कहाय ॥
ध्यावो पारसप्रभु महा, बसे सदा जो पास।
राशि सकल गुण रतनकी, काटै कर्मजु पासि ॥
चातुरमासिक सारिखे, उतपत जीवन आन।
व्रती जतीसे नाहिं कोऊ, गमन तजे गुणवान ॥
जिन कल्याणक क्षेत्रसे, और न तीरथ जान।
तेहु न निज तीरथ जिसे, इह निश्चै कर मान ॥१००॥
निज तीरथ निज क्षेत्र है, असंख्यात परदेश।
तहां विराजै आतमा, जानै भाव असेस ॥
अष्टमि चउदसि सारिखी, परवी और न जानि।
आष्टाह्निकसे लोकमें, पर्व न कोइ प्रवानि ॥
नंदीसुर सो धाम नहीं, जहां हरख अति होय।
नंदादिक वापीन सी, नहीं वापिका कोय ॥

नारकसे क्रोधो नहीं, शठ नर सो न गुमान ।
विकल न पशुगण सारिखे, लोभ न दंभ समान ॥
नारकसे न कुरूप कोउ, देवनिसे न सुरूप ।
नरसे धर्माधर नहीं, नहिं पशुसे बहुरूप ॥
कारण भोग न दानसो, तपसो, सुर्ग न मूल ।
हिंसारम्भ समान नहीं, कारण नरक सथूल ॥
पशुगति कारण कपटसो, और न सोइ नखान ।
सरल निगर्व सुभाव सो, नरभव मूल न आन ॥
सुख कारण नहि शुभ समो, अशुभसम नहिं दुखमूल ।
नहीं शुद्धसो लोकमें, मोक्ष मूल अनुकूल ॥
पोसह पणिक्रमणादि सो, शुभाचरण नहिं होइ ।
विषयकषाय कलंकसो, अशुभाचरण न कोइ ॥
आतम अनुभव सारिखा, शुद्ध भाव नहीं वीर ।
नहीं अनुभवो सारिखे, तीन भुवनमें धीर ॥१०॥
नारि समान न नागिनी, नारि समान पिशाच ।
नारि समान न व्याधि है, रहैं मूढ़जन राचि ॥
ब्रह्मज्ञानको विश्वमें, वैरी है विभचार ।
ब्रह्मचर्य सो मित्र नहीं, इह निश्चै उर धारि ॥
कायर कृपण समान नहिं, सुभट न त्यागी तुल्य ।
रंक न आसादाससे, लहै न भाव अतुल्य ॥
संत न आशा रहितसे, आशा त्यागें साध ।
साध समान अवाध नहिं, करहिं तत्त्व आराध ॥

निज गुणसे नहिं भूषण, भूषन चाहि समान।
चन्द न दश दिश माहिंये, इह भाषें भगवान ॥
भोजन तृपति समान नहिं, भोजन सगल जिर्गीन।
राजन शिवपुरराज सौ, जामें काल घकीन ॥
गात न सिद्ध अनंतते, भाव न भाव समान।
भाव न ज्ञानानंदसे इह निश्चै परमान ॥
चेतनता सत्ता सहा, ता सम पटरानी न।
शक्ति अनंतानंतसी, रंजलोक जानी न ॥
नारकतै दुखिया नहीं, इषगी देव जिगैन।
चिन्तावान मिनखसे, असहाई पशुसे न ॥
सूक्षम अलभ प्रजापता, जीव निगोद निवास।
ता सम सूक्षम थावर न, इह जिन आज्ञा भास ॥ २० ॥
अलसयासे बेइन्द्रिया, और न अलप शरीर।
नहीं कुन्थियासे अलप, ते इन्द्रिय तन धीर ॥
काणमच्छिकासे न तुच्छ, चौइन्द्रिय तन धार।
तन्दुलमच्छ समान तुछ, पंचेन्द्रि न विचार ॥
चुगली-चोरी अति बुरी, जोगे जारी ताप।
चोरी चमचोरी तथा जुवा आमिष पाप ॥
मदिरा मृगया मांगना पर महिलासु प्रीति।
परद्रोह परपंच अर पाखंडादि प्रतीत ॥
तजो अभक्षण भक्ष्य अरु, तजो अगम्यागम्य।
तजो विपर्जे भाव सहु त्यागहु पाप अरम्य ॥ २५ ॥

वज्र चक्रसे लोकमें, आयुध और न वीर।
वज्रायुध चक्रायुधी, तिनसे प्रबल न धीर ॥३७॥
हल मुसलायुध सारिखे, भद्र भाव नहिं भूप।
नहिं धनुपायुध सारिखे, केलि कुतुहल रूप ॥३८॥
नाहिं त्रिसूलायुध जिसै, और न भयकर कोइ।
नहिं पहुपायुध सारिखे, महा मनोहर होइ ॥३९॥
धर्मायुध से धर्मधर, सर्वोत्तम सब नाथ।
और जानो लोकमें सकल जिनोंके साथ ॥४०॥
नहिं व्यभिचारी सारिखा, पापाचारी और।
नहिं ब्रह्मचारी समा, आचारी सिरमौर ॥४१॥
मायासो कुलटा नहीं, लगी जगमके संग।
विरचे क्षणमें पापिनी, परकीया बहु रंग ॥४२॥
नहिं चिद्रूपा सिद्धिसी, सुकिया जगत मंझार।
नहिं नायक चिद्रूप सो, आनन्दी अविकार ॥४३॥
न्यारी होय न चेतना, है चेतनको रूप।
राम रूप सी नहिं रमा, रामस्वरूप अनूप ॥४४॥
कनक कामिनी राग तें, लखी जाय नहिं सोइ।
संयम शील सुभाव तें, ताको दरसन होइ ॥४५॥
शील ओपमा बहुत हैं, कहै कहाँ लौ कोय।
जाँने श्री जिनराजजू, शील शिरोमणि सोय ॥४६॥
दौलत ओर न ऋद्धिसी, ऋद्धि न बुद्धि समान।
बुद्धि न केवल सिद्धिसी, इह निश्चै परवान ॥४७॥

अथ शील स्वरूप निरूपण

कह्यो दोय विध शीलव्रत, निश्चै अर व्हवहार ।
सो धारो उरमें सुधी, त्यागो सकल विकार ॥४८॥
निश्चै परम समाधितं, खिसवौ नाहिं कदाचि ।
लखिवौ आतमभावको, रहिवौ निजमें राचि ॥४६॥
निज परणति परगट जहां, पर परणति परिहार ।
निश्चै शील निधान जो, वर्जित सकल विकार ॥५०॥
पर परणति जे परणमें, ते विभचारी जानि ।
मानि ब्रह्मचारी तिके लेहि ब्रह्म पहिचानि ॥५१॥
परम शुद्ध परणति विषै, मगन रहै धरि ध्यान ।
पावें निश्चै शीलको, भावें आतमज्ञान ॥५२॥
निज परणति निज चेतना, ज्ञान सरूपा होइ ।
दरसन रूपा परम जो, चारितरूपा सोइ ॥५३॥
जड़रूपा जगबुद्धि जो, आपापर न लखेह ।
पर परणतिसो जानिये, तन-धन माहिं फसेह ॥५४॥
पर परणतिके मूल ए, राग दोष मद मोह ।
काम क्रोध छल लाभ खल, परनिन्दा परद्रोह ॥५५॥
दम्भ प्रपञ्च मिथ्यात मल, पाखण्डादि अनन्त ।
इन करि जीव अनादिके, भव भवमें भटकन्त ॥५६॥
जो लग मिथ्यापरणती, सठजनके परकाम ।
तौ लगसम्यकपरणती,—होय न व्रतत्रिकाल ॥५७॥

जोगीरासा।

तजि विभचारी भाव, सबैही भए ब्रह्मचारी जे।
ते शिवपुरमें जाय शिरजे, भव्यन भवतारी जे ॥५८॥
विभचारी जे पापाचारी, ते भरमें भवमें।
पर परणतिसों रचिया, जौलों जाय न सिवमें ॥५९॥
जगमें पारो जड़ अनुरागे, लागे नाहीं निजमें।
कर्म कर्मफलरूपहोय कै, भंवर भ्रम रजमें ॥६०॥
ज्ञान चेतना लखी न अबलों, तत्त्वस्वरूपा सुद्धा।
जामें कर्म न भर्मकलपना, भाव न एक असुद्धा ॥६१॥
मिथ्या परणति त्यागै कोई, सम्यकदृष्टी होई।
अनुभवरसमें भीगै जोई, शीलवन्त है सोई ॥६२॥
निश्चै शील बखान्यूं एई, अचल अखड प्रभावा।
परम समाधि मई निजभावा, लहां न एक विभावा ॥६३॥

छन्द चाल।

ाब सुनि ब्यवहार सुशीला, धारनमें करहु न ढीला।
ढ़ ब्रत आखड़ी धरिवौ, नारिको संग न करिवौ ॥६४॥
ारी है नरकप्रतोली, नारिनमें कुमति अतोली।
: महा मोहकी टोली, सेवें जिनकी मति भोली ॥६५॥
ारी जग-जन-मन चोरै, नारी भवजलमें बोरै।
ाव भव दुखदायक जानों, नारीसों प्रीति न ठानों ॥६६॥
यागें नारीको संसा, नहिं करें शीलब्रत भंगा।
े पावें मुक्ति निवासा, कबहूं न करें भववासा ॥६७॥

इह मदन महा दुखदाई, याकू जीतें मुनिराई।
मुनिराय महा बलवंता, मनजीत मानजित संता ॥६८॥
शीलहि सुरपति सिर नावै, शीलहिं शिवपुर जति जावै।
साधू हैं शीलसरूपा, यह शील सुव्रत अनूपा ॥६९॥
मुनिके कछुहू न विकारा, मन वच तन सर्वप्रकारा।
चितवौ व्रत चेतन माहीं, नारीको सपरस नाहीं ॥७०॥
गृहपतिके कछुक विकारा, तातें ए अणुव्रत धारा।
परदारा कबहुं न सेवै, परधन कबहुं नहिं लेवै ॥७१॥
जेती जगमें परनारी, वेटी वहनी महतारी।
इह भांति गिनै जो भाई, सो श्रावक शुद्ध कहाई ॥७२॥
निजदारा पर संतोपा, नहिं काम राग अति पोपा।
विरकत भावै कोउ समये, सेवै निज नारी कमये ॥७३॥
दिनको न करै ए कामा, रात्री कबहुक परिणामा।
मैथुनके समये मवना, नहिं राण करै रति रमना ॥७४॥
परवी सवही प्रति पालै, व्रत शील धारि अघ टालै।
अष्टान्हिक तीनों धारै, भादवके मास हु सारै ॥७५॥
ये दिवस धर्मके मूला, इनमें मैथुन अघ थूला।
अवर हु जै व्रतके दिवसा, पालै इन्द्रिनिके न बसा ॥७६॥
अपने अर तियके व्रत्ता, सवही पालै निरवृत्ता।
या विधि जिननारी सेवै, परि मनमें ऐसें वेवै ॥७७॥
कब तजि हौं काम विकारा, इह कर्म महा दुख भारा।
यामें हिंसा बहु होवै, या कर्म करें शुभ खोवै ॥७८॥

जैसे नाली तिल भरिये, रंचहु खाली नहिं धरिये।
तातो कीलो ता माहै, लोहेको संसै नाहैं ॥७९॥
थालैं तिल भस्म जु होई, यह परतछि देखौ कोई।
तैसे ही लिङ्ग करि जीवा, नासैं भग माहि अतीवा ॥८०॥
तातैं यह मैथुन निंद्या, याकों त्यागैं जगवंद्या।
धन धन्निभाग जाको है, जो मैथुनतें जु वच्यौ है ॥८१॥
जे बाल ब्रह्मव्रत धारैं, आजनम न मैथुन कारैं।
तिनके चरननकी भक्ति, दे भव्यजीवकूं मुक्ति ॥८२॥
हमहू ऐसे कब होहैं, तजि नारी व्रत करि सोहैं।
या मैथुनमें न भलाई, परतछ दीखै अघ भाई ॥८३॥
अपनोहू नारी त्यागै, जब जिनवरके मत लागै।
यह देहहु अपनी नाहीं, चेतन बैठो जा माहीं ॥८४॥
तौ नारी कैसे अपनी, यह गुरु आज्ञा उर खपनी।
या विधि चितवै मन माहीं, कब घर तजि बनकूं जाहीं ॥८५॥
जबलों बलवान जु मोहा, तबलों इह मनमथ द्रोहा।
छांड़ै नहिं हमसों पापी, तातें व्याही त्रिय थापी ॥८६॥
जब हम बलवान जु होहैं, मारैं मनमथ अर मोहैं।
असमर्था नारी राखैं ॥८७॥
यह भावन नित भावंतो, घर माहि उदास रहंतो।
जैसें परघर पाहुणियो, तैसें ये श्रावक गिणियो ॥८८॥
वह तौ घर पहुंचौ चाहै, यह शिवपुरकों जु उमा है।
अति भाव उदासी जाको, निज चेतनमें चित ताको ॥८९॥

छाड़ै सब राग रु दोषा, धारै सामायक पोषा।
कबहू न रत्त ह्वै मगन त्रियामों न रमैं ॥९०॥
मुख आदि विकारा जे हैं, छाड़े नर ज्ञानी ते हैं।
इह त्रिय सेवन विधि भाखी, विन पाणिग्रह नहिं राखी ।९१।
श्रावकव्रत धरि सुरपरि ह्वै, सुरपतितें चय नरपति ह्वै ।
पुनि मुनि ह्वै पावै मुक्ता, यह शील प्रभाव सु जुक्ती ॥९२॥
नहिं शील सारिखौ कोई, दे सुरपुर शिवपुर होई।
जे बाल ब्रह्मचारी हैं, सम्यकदर्शन धारी हैं ॥९३॥
तिनके सम है नहिं दूजा, पावै त्रिभुवन करि पूजा।
जे जीव कुशीले पापा, पावें भव भव संतापा ॥९४॥
विभचारी तुल्य न होई, अपराधी जगमें कोई।
ह्वै नरक निगोग निवासा, पापनिका अति दुख भासा ।९५।
जेते जु अनाचारा हैं, विभचार पिछै सारा हैं।
त्यागौ भविजन विभचारा, पालौ श्रावन आचारा ॥९६॥

दोहा—मुख्य वारता यह भया, बाल ब्रह्मव्रत लेय।
जो यह व्रत धार न सके, तौ इक ब्याह करेय ॥९७॥
दूजो नारि न जोग्य है, व्रतधारिनलों वीर।
भोग समान न रोग हैं, इह धारै उर धीर ॥९८॥
जो अभिलाषा बहुत है, विषय भोगकी जाहि।
तौ विवाह औरहु करै, नहिं परदारा चाहि ॥९९॥
परदारा सम पाप नहिं, तीनलोकमें और।
जे सेवें परनारिको, लहैं नर्कमें ठौर ॥१००॥

नरक मांहिं बहु काललों, दुख देवें अधिकाय।
वज्राग्नि पुतलीनिसों, तिनको अंग तपाय ॥१॥
जरि-जरि तिनकी देह जो, जैसेको तैसोहि।
रहै सागरावधि तहां, दुःख सहंता सोहि ॥२॥
कहिवेमें आवें नहीं, नरकधामके कष्ट।
ते पावें पापी महा, परदारातें दुष्ट ॥३॥
नारकके बहु कष्ट लहि, खोटे नर तिर होय।
जन्म-जन्म दुरगति लहैं, दुख देखैं अघ सोय ॥४॥
अर या ही भवमें सठा, अपजस दुःख लहेय।
राजदण्ड परचण्ड अति, पावें परतिय सेय ॥५।

वेसरी छन्द।

जगमें धन वल्लभ है भाई, धनहूतें जीतव्र अधिकाई।
जीतवतें लज्जा है वल्लभ, लज्जातें नारी नर दुल्लभ ॥६॥
जो पापी परदारा सेवें, ते बहुतनिकी कल्जा लेवें।
बैर बढ़ै जु बहुसेती वीरा, परदारा सेवें नहिं धीरा ॥७॥
धन जीतव लज्जा जस माना, सव जाय या करि व्रत ज्ञाना।
कुलकों लागै वड़ो कलंका, या अघको निंदैं अकलङ्का ॥८॥
परनारीरत पापिनकों जे, दस वेगा उपजे मन सों जे।
चिन्ता अर देखन अभिलाषा, फुनि निसास नाखन भी भाषा ९
कामज्वर होवै परकासा, उपजै दाह महादुख भासा।
भोजनकी रुचि रहैं न कोई, बहुरि महामूरछा होई ॥१०॥

था होय सो अति उनमत्ता, अंध महा अविवेक प्रमत्ता।
ानौं प्राण रहनको संसै, अथवा छूटै प्राण निसंसै ॥११॥
हे वेग ए दश दुखदाई, विभचारीके उपजें भाई।
ौलग वर्णन काजै मित्रा, परदारा सेवें न पवित्रा ॥१२॥
ही पाप है मेरु समाना, और पाप है सरस्यूं दाना।
ाके तुल्य कुमर्म न कोई, सर्व दोषको मूल जु होई ॥१३॥
र तेही परदारा त्यागें, नारी जे पर पुरुष न लागें।
र्वोत्तम वह नारि जु भाई, ब्रह्मचर्य्य आजन्म धराई ॥१४॥
याह करै नहिं जो गुणवन्ती, विषय भाव त्यागै गुणवन्ती।
ब्राह्मी सुन्दरि ऋषभ सुता जे, रहित विकार सुधर्म रता जे ।१५।
चेटक पुत्री चंदनवाला, ब्रह्मचारिणी व्रत्त विशाला।
बहुरि अनन्तमती अति शुद्धा, वणिक सुता व्रत्त शील प्रवृद्धा ।१६।
इत्यादिक जो कीर्ति चितावै, निरमल निरदूषण व्रत पालै।
महा सती जाकै न विकारी, विषयन ऊपरि भाव न टारी ।१७।
आतम तत्त्व लख्यौ निरवेदा, काम कल्पना सर्वै निषेदा।
पुरुष लखं सहु सुत अरु भाई, पिता समाना श्वश्व न काई ॥१८॥
धारै बाल ब्रह्मव्रत शुद्धा, गुरूप्रसाद भई प्रतिबुद्धा।
ऐसो समरथ नाहीं पावै, तो पतिव्रत व्रत्त धरावे ॥१९॥
मात पिताकी आज्ञा लेती, एक पुरुष धारै विधि सेती।
पाणिग्रहण कर सो कुलवन्ती, पतिकी सेव करै गुणवन्ती ॥२०॥
और पुरुष सहु पिता समाना, कै भाई पुत्रा करि माना।
मेघेश्वर राजाकी राणी, तथा रामकी राणी जाणी ॥२१॥

श्रीपाल भूपतिकी नारी, इत्यादिक कीरति जु चितारी।
जगसौं विरकत भाव प्रवर्तें, औसर पाय सिताव निवर्तें ॥२२॥
मैथुनकों जानें पशुकर्मा, यह उत्तम नारिनको धर्मा।
तजि परिवार जु सम्यकवंती, ह्वै आर्या तप संजमवन्ती ॥२३॥
ज्ञान विवेक विराग प्रभावै, स्त्रीपद छांड़ि स्वर्गपुर जावै।
सुरग माहि उतकिष्टा सुर ह्वै, बहुत काल सुख लहि फुनिनर ह्वै
धारै महाव्रत निज ध्यावै, कर्म काटि शिवपुरको जावै।
शिवपुर सिद्धक्षेत्रकू कहिए, और न दूजौ शिवपुर लहिये ॥२५॥
शिव है नाम सिद्ध भगवन्ता, अष्टकर्म हर देव अनन्ता।
भुक्ति मुक्तिदायक इह शीला, या धरवेमें ना कर ढीला ॥२६॥
शील सुधारस पान करै जो, अजरामर पद काय भरै जो।
शील विना नारी धृग जन्मा, जन्म जन्म पावे हि कुजन्मा ।२७।
रानी राव जशोधर केरी, शील विना आपद बहुतेरी।
लही नरकमें तातें त्यागौ, कदै कुशीलपंथ मति लागौ ॥२८॥
शील समान धर्म जु होई, नाहिं कुशील समौ अब कोई।
जे नर नारि शीलव्रत धारें, ते निश्चै परब्रह्म निहारें ॥२६॥
त्यागे दशों दोष व्रतवन्ता, ते सुनि एक चित्त करि सन्ता।
अंजन मंजन बहु सिंगारा, करना नहीं व्रतिनकों भारा ॥३०॥
तजिवो तिनकों असन गरिष्ठा, अर तजिवौ संसर्ग सपष्टा।
नरकों नारीकों संसर्गा, नारिनकों उचित न नरवर्गा ॥३१॥
ह्वै संसर्ग थकी जु विकारा, अर तजिवौ तौर्यत्रिक सारा।
तौर्यत्रिकको अर्थ जु भाई, गीत नृत्य वादित्र बजाई ॥३२॥

मुनिकों इनतें कछुहु न कामा, श्रावकके पूजा विश्रामा।
करे जिनेश्वर पदकी पूजा, जिन प्रतिमा बिन और न दूजा।३३।
अष्टद्रव्यसे पूजा करई, तहां गीत वादित्र जु धरई।
नृत्य करै प्रभुजीके आगे, जिनगुनमें भविजन मन लागै॥३४॥
और न सिंगारादिक गावे, केवल जिनपदसों उर लावे।
नारी-विषयनका संकलपा, तजिवौ बुधकों सर्व विकलपा॥३५॥
अंग उपंग निरखनों नाहीं, जो निरखै तो दोष धरा ही।
सतकारादिक नारी जनसों, करनों नाहीं मन-वच-तनसो॥३६॥
पूरव भोग-विलास न चितवौ, अर आगामी वांछा हरिवौ।
सुपने हू नहिं मन मथःकर्मा, ए दश दोष तजै व्रत धर्मा॥३७॥
व्रत नहिं शील बराबर कोई, जिनशासनकी आज्ञा होई।

उक्तञ्च श्रीज्ञानार्णवमध्ये

अद्यं शरीरसंस्कारो द्वितीयं वृष्यसेवनम्।
तौर्यत्रिकं तृतीयं स्यात्संसर्गस्तुर्यमिष्यते॥१॥
योषिद्विषसंकल्पं पंचमं परकीर्तितं।
तदंगवीक्षणं षष्ठं सत्कारः सप्तमो मतः॥२॥
पूर्वानुभूतसंभोगः स्मरणं स्यात्तदष्टमम्।
नवमे भावनी चिन्ता दशमे वस्तिमोक्षणं॥३॥

कवित्त।

तिय-थल-वासि प्रेमरुचि निरखन, देखि रीझ भाषत मधु बैन।
पूरव भोग केलिरस चितवन, गरुव अहार लेत चित चैन।

करि सुचि तन सिंगार वनावत, तिय परजंक मध्य सुखसैन।
मनंमथ कथा उदरभरि भोजन, ऐ नव वाड़ि जानि मति जैन ३८

दोहा—अतीचार सुनि पांच अब, सुनि करि तजि वर वीर।
जंग चौथौ व्रत शुद्ध ह्वै, इह भाषें मुनि धीर ॥३९॥
ब्याह सगाई पारकी, किरिया अव्रतपोष।
शीलवन्त नर नहिं करै, जिन त्यागे सहु दोष ॥४०॥
इत्वरिका कुलटा त्रिया, ताकी है द्वै जाति।
परिग्रहीना एक है, जाके सामिल खाति ॥४१॥
अपरिग्रहीता दूसरी जाके, स्वामि न कोय।
ए इत्वरिका द्वै विधा, पर पुरुषा-रत होय ॥४२॥
जिनसों रहनों दूर अति, तिनकों संग तजेय।
तिनसों संभाषण नहीं, तब जनम सुधरेय ॥४३॥
गमन करै नहिं वा तरफ, विचरै जहां न नारि।
ढारि नारिकों नेह नर, धरै व्रत अघटारि ॥४४॥
तजि अनंगक्रीडा सवै, क्रीड़ा अघकी एहि।
मैन मानि मन जीति कर, ब्रह्मचर्य व्रत लेहि ॥४५॥
निज नारीहूतें सुधी, करै न अधिकी प्रीति।
भाव तीव्र नहिं कामके, धरै धर्मकी रीति ॥४६॥
कहे अतिक्रम पंच ए, इनमें भला न कोय।
ए सबहा तजिया थका, शील निर्मला होय ॥४७॥
नीली सेठसुता सुमा, शीलव्रत परसाद।
देवन करि पूजा लही, दूरि भयो अपवाद ॥४८॥

शीलप्रभावै जयप्रिया, सुभ सुलोचना नारि।
लही प्रशंसा सुरनि करि, सम्यकदर्शन धारि ॥४६॥
शील-प्रसादै रामजी, जनकसुता सुभ भाव।
पूज्य सुरासुर नरनि करि, भये जगतकी नाव ॥५०॥
सेठ विजय अर सेठनी, विजया शीलप्रसाद।
भई प्रशंसा मुनिन करि, भये रहित परमाद ॥५१॥
शुक्लपक्ष अर कृष्णपख, धारि शीलव्रत तेहि।
तीनलोक पूजित भये, जिन आज्ञा उर लेहि ॥५२॥
सेठ सुदर्शन आदि बहु, सीझे शीलप्रताप।
नमस्कार या व्रतकों, जो मेटै भवताप ॥५३॥
जे सीझे ते शील करि, और न मारग कोय।
जनम जरा मरणादिको, नाशक यह व्रत होय ॥५४॥
धरि कुशील बहु पापिया, पड़े नरक मंझार।
तिनको को निरणय करै, कहत न आवै पार ॥५५॥
रावण खोटे भाव धरि, गये अधोगति माहि।
धवल सेठ नरकैं गयो, यामैं संशय नाहिं ॥५६॥
कोटपाल जमदण्ड शठ, करि कुशील अति पाप।
गयो नरककी भूमिमें, लहि राजातैं ताप ॥५७॥
बहुरि हुतौ जमदण्ड इक, कोटपाल गुणवन्त।
नीति धर्म परभावतें, पायौ जस जयवन्त ॥५८॥
सर्व गुणां हैं शीलमें, अरु कुशीलमें दोष।
नाहिं कुशील समान कोउ, और पापको पोष ॥५९॥

इन दोउनके गुण अगुण, कहत न आवै थाह ।
जाने श्री जिनराज जू, केवल रूप अथाह ॥६०॥
महिमा शील महंतको, कहैं महा गणधार ।
भाषै श्री जिन भारती, रटै साधु भव तार ॥६१॥
सरवारथसिधिके महा, अहमिन्द्रा परवीन ।
गावैं गुण व्रत शीलके, जे अनुभव रसलीन ॥ ६२ ॥
कथैं काति इन्द्रादिका, जपं सुजस जोगीन्द्र ।
लौकान्तिक बरणन करैं, रटैं नरिन्द्र फणीन्द्र ॥ ६३ ॥
चन्द सूर सुर असुर खग, महिमा शील करेय ।
सूरि संत अध्यापका, मन वच काय धरेय ॥ ६४ ॥
हमसे अलपमती कहा, कैसें गुण बरणेह ।
नमों नमों व्रत शीलकों, रहैं ऋणी नरणेय ॥ ६५ ॥
दया सत्य अस्तेय अर, शीलै करि परिणाम ।
भाषों पञ्चम व्रत, जो परिग्रह त्याग सुनाम ॥ ६६ ॥

इति चतुर्थव्रतनिरूपण ।

इन चारनि विन ना हुवै, परिग्रहके परिहार ।
परिग्रहके परिहार विन, नहिं पावे भवपार ॥ ६७ ॥
मुनिकों सर्वहि त्यागवौ, अंतर बाहिज संग ।
धर्म अकिंचन धारिवो, करिवौ तृष्णाभङ्ग ॥ ६८ ॥
अपने आतम भाव विनु, जो पररूपा वस्तु ।
सो परिग्रह भाषौ सुधी, ताको त्याग प्रशस्त ॥ ६९ ॥

सर्व भेद चउबीस हैं, चउदह अर दस भेलि।
अंतर बाहिज संग ये, दुरगति फलकी बेलि॥ ७० ॥
परिगृह द्वै विध त्यागिये, तब लहिये निज भाव।
ब्रह्मज्ञानके शत्रु ये, नर्क निगोद उपाय॥ ७१ ॥
अन्तरङ्ग परिगृहतनें भेद चतुर्दश जान।
मिथ्यात्वादिक जो सबै, जिन आज्ञा उर आन॥ ७२ ॥
राग दोष मिथ्यात अर, चउ कषाय क्रोधादि।
षट हास्यादिक वेद फुनि, चउदस भेद अनादि॥ ७३ ॥
राग कहावै प्रीति अरु, दोष होइ अप्रीति॥
राग दोष तज भव्यजन, धरै धर्मकी रीति॥ ७४ ॥
जहां तत्त्व श्रद्धा नहीं, सो मिथ्यात्व कहाय।
जड़ चेतनको ज्ञान नही, भर्मरूप दरसाय॥ ७५ ॥
क्रोध मान चउ लोभ ये, चउ कषाय बलवन्त।
हतिये ज्ञान सुबानतें, लहिये भाव अनन्त॥ ७६ ॥
हास्य अरति अरु शोक भय, बहुरि गलानि व वान।
तजिये षट हास्यादिका, मोह प्रकृति दुखदानि॥ ७७ ॥
वेद भेद हैं तीन फुनि, पुरुष नपुंसक नारि।
चेतनतें न्यारे लखौ, जिनवानी उर धारि॥ ७८ ॥
एक समय इक जीवके, उदय होय इक वेद।
तातें गनिये वेद इक, यह गाव निरवेद॥ ७९ ॥
संख असंख अनन्त हैं, इनि चउदहके भेद।
अन्तरंग ये संग तजि, करिये कर्म विछेद॥ ८० ॥

अन्तर संग तजे बिना, होई न सम्यक ज्ञान।
बिना ज्ञान लोभ न मिटै, इह भाषें भगवान ॥ ८१ ॥
अत मुनि बाहर संगजे, दसधा हैं दुखदाय।
मुनिने त्यागे सर्व ही, दीये दोष उड़ाय ॥ ८२ ॥
क्षेत्र वास्तु चौपद द्विपद, धान्य द्रव्य कुप्यादि।
भाजन आसन सेज ये, दस परकार अनादि ॥ ८३ ॥
तजें संग चउवीस सहु, भजें नाथ चउबीस।
सजें साज शिवलोकको सबमें बड़े मुनीस ॥ ८४ ॥
मूर्च्छा ममता सहु तजी, तृष्णा दई उड़ाय।
नगन दिगम्बर भव तिरें, धरें न बहुरो काय ॥ ८५ ॥
श्रावकके ममता अलप, बहुतृष्णाकों त्याग।
राग नहीं पर द्रव्यसों, एक धर्मको राग ॥ ८६ ॥
धरम हेत खरचै दरव, गर्व नाहिं मन माहि।
सब जीवनसों मित्रता, दुराचारता नाहिं ॥ ८७ ॥
जीव दयाके कारणें, तजौ बहुत आरम्भ।
परिग्रहको परिमाण करि, तजो सकल ही दम्भ ॥ ८८ ॥
लोभ लहरि मेटी जिनो, धर्यौ धम संतोष।
ते श्रावक निरदोष हैं, नहीं पापको पोष ॥ ८९ ॥
क्षेत्र आदि दस संगको, कियो तिने परिमाण।
राख्यौ परिग्रह अलप ही, तिन सम और न जाण ॥ ९० ॥
कह्यौ परिग्रह दस विधा, बहिरङ्गा जे वीर।
तिनके भेद सुनू भया, भाखें मुनिवर धीर ॥ ९१ ॥

चौपाई।

खेत्र परिग्रह खेत्र बखान, जहां ऊपजे धान्य निधान।
वास्तु कहावे रहवा तना, मन्दिर हाट नौहरा बना ॥९२॥
हस्ती घोटक ऊंटरु आदि, गाय बलद महिषी इत्यादि।
होय राखणां जो तिरजंच, चौपद परिग्रह जानि प्रपंच ॥९३॥
द्विपद परीग्रह दासी दास, पुत्र कलत्रादिक परकास।
धान्य कहावें गेहूं आदि, जीवन जनको अन्न अनादि ॥९४॥
धन कनकादिक सबही धात, चिंतामणि आदिक मणि जात।
चौवा चन्दन अगर सुगन्ध, अतर अरगजा आदि प्रबंध ॥९५॥
तेल फुलेल घृतादिक जेह, बहुरि वस्त्र सब भांति कहेह।
ये सब कुप्य परिग्रह कहे, संसारी जीवनितें गहे ॥९६॥
भोजन नाम जु बासन होय, धातु पषाण काठके कोय।
माटी आदि कहां लग कहैं, साधन भाजनके सहु गहैं ॥९७॥
आसन बैसनके बहु जान, सिंघासन प्रमुखा परवान।
गद्दी गिलम आदि जतेक, त्यागो परिगृह धारि विवेक ॥९८॥
सज्या नाम सेजको कह्यो, भूमि शयन मुनिराजनि गह्यो।
ए दसधा परिगृह द्वय रूप, कैइक जड़ कैइक चिद्रूप ॥९९॥
द्विपद चतुपपद आदि सजीव, रतन धातु वस्त्रादि अजीव।
अपने आतमतैं सब भिन्न, परिगृहतें ह्वै खेद जु खिन्न ॥१००॥
हैं परिगृह चिन्ताके धाम, इनकों त्याग लहैं शिवठाम।
जिनवरकी चक्री हलधर धीर, कामदेव आदिक वर बीर ॥१॥

तजि परिगृह धारैं मुनिरूप, मुनिसम और न धर्म अनूप।
मुनि होवेकी शक्ति न होय, श्रावक व्रत धारैं नर सोय ॥२॥
करै परिगृहको परमाण, त्यागै तृष्णा सोहि सुजाण।
इह परिगृह अति दुखको मूल, है सुखतैं अतिही प्रतिकूल ॥३॥
जैसे बेगारी सिर भार, तैसैं यह परिगृह अधिकार।
जेतौ थोरौ तेतौ चैन, यह आज्ञा गावैं जिन वैन ॥४॥
तातैं अल्पारम्भी होय, अल्प परिगृह धारे सोय।
ताहूको नित त्यागो चहै, मनमाहीं अति विरकत रहै ॥५॥
जैसैं राहु केतु करि कान्ति, रवि शशिकी ह्वै औरहिं भांति।
तैसैं परणति होय मलीन, आतमकी परिगृह करि दीन ॥६॥
ध्यान न उपजै या करि कबै, याहि तजें पावैं शिव तबै।
समताको यह वैरी होय, मित्र अधीरपनाको सोय ॥७॥
मोह तनों विश्राम निवास, यातें भविजन रहहिं उदास।
नासै सुखकौं शुभतैं दूर, अशुभ भावतैं है परिपूरि ॥८॥
खानि पापकी दुखकी राशि, रह्यौ आपदाको पद भासि।
आरतिरुद्र प्रकाशक अंग, धर्म ध्यानको धरइ न संग।
गुण अनंत धन धारयो चहै, सो परिगृहतैं दूरहि रहै ॥९॥

दोहा—लीलावन दुरध्यानको, बहु आरम्भ सरूप।
आकुलताकी निधि महा, संसैरूप विरूप ॥१०॥
मदका मन्त्री काम घर, हेतु शोकको सोइ।
[illegible] ॥११॥

धन्य धरा वह होयगी, जब तजियेगो संग ।
यामें बड़पन नाहिं कछू, महा दोषको अङ्ग ॥१२॥
हिंसादिक अपराधको कारण मूल बखानि ।
जनम जनममें जीवको, दुखदाई सो जानि ॥१३॥
धृग धृग द्विविधा संगको, जो रोके शिव मङ्ग ।
चहुँगति माहि भ्रमाय करि, करै सदा सुख भङ्ग ॥१४॥
जो यामें बड़पन गिनै, सो मूरख मतिहीन ।
परिग्रह वान समान नहिं, और जगतमें दीन ।
धन्य धन्य धरमज्ञ जे, याकू तुच्छ गिनेय ।
माया ममता मूर्छा, सर्वारम्भ तजेय ॥१६॥
यही भावना भावतो, भविजन रहै उदास ।
मनमें मुनिव्रतकी लगन, सो श्रावक जिनदास ॥१७॥
बहुरि विचारै सो सुधी, अगनि धरै गुण शीत ।
जो कदापि तौहु न करै, परिग्रहवान अभीत ॥१८॥
कालकूट जो अमृता, होइ दैव संयोग ।
नहिं तथापि सुख होय ते, इन्द्रियनके रसभोग ॥१९॥
विषयनिमें जे राचिया, ते रुलिहैं भव माहिं ।
सुख है आतम ज्ञानमें, विषय माहिं सुख नाहिं ॥२०॥
थिर ह्वै तड़ित प्रकाशजी, तौहु देह थिर नाहिं ।
देह नेह करिवौ वृथा, यह चितवै मनमाहिं ॥२१॥
इन्द्रजाल जो सत्य ह्वै, दैवयोग परवान ।
तौ पन संसारी जना, नाहिं कदे सुखवान ॥२२॥

चहुंगतिमें नहिं रम्यता, रम्य आतमाराम।
जाके अनुभवतें महा, है पञ्चमगति धाम ॥२३॥
इह विचार जाके भयौ, देहहु अपनी नाहिं।
सो कैसे परपञ्च करि, बूड़ै परिग्रह माहि ॥२४॥

सवैया तेईसा

हय गय पायक आदि परिग्रह, पुण्य उदै गृह होय विभो अति।
पाय विभो फुनि मोहित होत, सरूप विसारि करै परसों रति॥
तारहि पोषण कारण काज, रच्यौ बहु आरम्भ बाधक दुर्गति।
ज्ञानि कहै हमकूं कबहूं मन, राम वहै फुनि देहहु घो मति॥२५॥
नाहिं संतोष समान जु आन है, श्रीभगवान प्रधान सुधर्मा।
है सुखरूप अनूप इहै गुण कारण ज्ञान हरै सब कर्मा।
पापनिको यह बाप जु लोभ, करै अति खोभ धरै अति मर्मा।
धारि संतोष लहै गुणकोष, तजै सब दोष लहै निजमर्मा॥२६॥
रंक सबै जग राव रिपोसुर, जो हि धरै शुभ शील संतोषा।
सोहि लहै निज आतम भेद, करै अघ छेद हरै दुख दोषा॥
श्रावक धन्य तजै सहु अन्य, हुए जु अनन्य गहै गुण कोषा।
काम न मोह न लोभ न लेश, नहि मान दहै रति रोषा॥२७॥
लोभ समान न औगुण आन, नहीं चुगली सम पाप अरूपा।
सत्यहि वैन कहै मुखतें शुभ, तो सम व्रत्त न तप्प निरूपा॥
पावन चित्त समान न तीरथ, आतम तुल्य न देव अनूपा।
सज्जनता सम और कहा गुण, भूषण और न कीरति रूपा॥२८॥

ह्म सुग्यान समान कहा धन, औजस तुल्य न मृत्यु कहाई।
चनिको गुरु देव दयानिधि, तासम कोई न है सुखदाई॥
ोष समान न दोप कहैं बुध, मोक्ष समान न आनन्द भाई।
ोष समान न कारण मोक्ष, कहैं भगवंत कृपा उर छाई॥२९॥
ंग प्रसंग भये बहु संग, तिनौ महिं नाह अभंग जु कोई।
ुद्ध निजामत भाव अखंडित, ता महिं चित्त धरै बुध सोई॥
ाध विदारण, दोप निवारण, लोक उधारण और न होई।
ता सम कोई न जान महामति, टारइराग विरोध जु दोई॥३०॥
दोहा—धन्य धन्य श्रावक व्रती, जो समकित धर धीर।
तन धन आतम भावतें, न्यारे देखै वीर॥३१॥
तन धनको अनुराग नहिं, एक धर्मको राग।
संतोषी समता धरो, करै लोभको त्याग॥३२॥
मोह तनी ग्यारह प्रकृति, शांत होय जब वीर।
तब धारै श्रावकव्रता, तृष्णा वर्जित धीर॥३३॥
तीन मिथ्यात कषाय वसु, ये ग्यारह परवान।
पंचम ठाने श्रावका, इनतें रहित सुजान॥३४॥
गई चौकरी द्वय प्रबल, जे दुरगति दुखदाय।
रहौ चौकरी द्वय अबै, तिनको नाश उपाय॥३५॥
चितवै मनमें सासती, है जौलग अवसाय।
तौ लग तीजी चौकरी उदै धरै रहवाय॥३६॥
अल्प परिग्रह धारई, जाके अल्पारम्भ।
अवसर पाय सिताब ही, त्यागै सर्वारम्भ॥३७॥

मुनिव्रतके परमाद शिव—ह्वै अथवा अहमिन्द्र।
श्रावकव्रत प्रमावतैं, सुर ह्वै तथा सुरिन्द्र ॥३८॥
परिग्रहको परमाण करि, जयकुमार गुणधार।
सुर-नरकर पूजित भयो, लह्यो भवोदधि पार ॥३९॥
परिग्रहकी तृष्णा करे, लवधदत्त गुणवीत।
गयो दुरगती दुख लहे, त्यों समश्रु नवनीत ॥४०॥
करे जु संख्या संगकी, हरैं देहतैं नेह।
अति न प्रमावै नर पशु गिनै आपसम तेह ॥४१॥
वांछ बहुत नहिं लादिवो, करनों बहुत न लोभ।
अति संग्रह तजिवो सदा, करनों बहुत न क्षोभ ॥४२॥
अति विस्मय नहिं धारिवौ, रहनों निःसन्देह।
झूठी माया जगतकी, अचिरज नाहिं गनेह ॥४३॥
परिग्रह संख्याव्रतनके अतीचार हैं पंच।
तिनकूं त्यागें जे व्रती तिनके पाप न रंच ॥४४॥
क्षेत्र वस्तु संख्या करी, ताकौं करै उलंघ।
अतीचार है प्रथम यह, भाषैं चउविधि संघ ॥४५॥
काहु प्रकारे भूलि करि, जोहि उलघै नेम।
अतीचार ताकों लगै, भाषैं पण्डित एम ॥४६॥
द्विपद चतुष्पद संगको, करि प्रमाण जो वीर।
अभिलाषा अधिकी धरै, सो न लहै भवतीर ॥४७॥
अतीचार दूजो इहै, सुनि तीजो अघरास।
धन धान्यादिक वस्तुको करि प्रमाण गुरुपास ॥४८॥

चित संकोच सकै नहीं, मन दौरावै मूढ़ ।
सो न लहै व्रत शुद्धता, होय न ध्यानारूढ़ ॥४९॥
हम राख्यौ परिग्रह अलप, सरै न एते माहि ।
ऐसे विकलप जो करो, वर्तमान सो नाहि ॥५०॥
कूप भांड परिग्रह तनों, करि प्रमाण तन धारि ।
चित्त चाहि केटै नहीं, सो चौथो अतिचार ॥५१॥
शायन नाम सय्या तनों, आसन द्वय विधि होय ।
थिर आसन चर आसना, करैं प्रमाण जु कोय ॥५२॥
फुनि अधिकों अभिलाश धरि, लावै व्रतहीं दोष ।
अतीचार सो पंचमो, रोकै मारग मोष ॥५३॥
थिर आसन सिंहासनों, ताहि आदि बहु जानि ।
त्यागै चक्रीमंडली, जिन आज्ञा उर आनि ॥५४॥
स्यंदन कहिये रथ प्रगट, सिवका है सुखपाल ।
ए थलके चर आसना, त्यागै भव्य भुपाल ॥५५॥
बहुरि विमानादिक जिके चर आसन शुभरूप ।
ते अकासके जानिये, त्यागें खेचर भूप ॥५६॥
नाव जिहाजादिक गिनें, चर आसन जल माहि ।
चर आसनकों पण्डिता, यान कहैं सक नाहिं ॥५७॥
सकल परिग्रह त्यागिवौ, सो मुनिमारग होय ।
किंचित मात्र जु राखिवौ, व्रत श्रावकको सोय ॥५८॥
व्याधि न तृष्णा सारिखी, तृष्णासी न उपाधि ।
नहि सन्तोष समान है, कारण परम समाधि ॥५९॥

तृष्णा करि भववन भ्रमैं, तृष्णा त्यागैं सन्त।
गृह परिग्रह बन्धन गिनें, ते निर्वाण लहन्त ॥६०॥
व्रत पांचमो इह कह्यौ, सम सन्तोषस्वरूप।
धन्य धन्य ते धीर है, त्यागैं लोभ विरूप ॥६१॥
जे सीझे ते लोभ हरि, और न मारिग होय।
मोह प्रकृतिमें लोभ सो, और न परबल कोय ॥६२॥
सर्व गुणनिको शत्रु है, लोभ नाम बलवन्त।
ताहि निवारैं व्रत ए, करें कर्मको अन्त ॥६३॥
नमस्कार संतोषकों, जाहि प्रशंसैं धीर।
जाकी महिमा अगम है, जा सम और न वीर ॥६४॥
जानैं श्रीजिनरायजू, या व्रतके गुण जेह।
और न पूरन ना लखै, गणधर आदि जिकेह ॥६५॥
हमसे अलपमती कहौ, कैसें कहैं बनाय।
नमों नमों या व्रत्तकों, जो भव पार कराय ॥६६॥
सन्तोषी जीवानिकौं, बार बार प्रणाम।
जिन पायो संतोष धन, सर्व सुखनिको धाम ॥६७॥
नहिं सन्तोष समान गुरु, धन नहिं या सम और।
निर विकलप नहि या समा, इह सबको सिरमौर ॥६८॥

इति पञ्चमव्रत निरूपण।

दया सत्य असतेय अर, ब्रह्मचर्य सन्तोष।
इन पांचनिकौं कर प्रणति, छट्टम व्रत निरदोष ॥६९॥

भाषों दिसि परिमाण शुभ, लोभ नासिवे काज।
जीवदयाके कारणें, उर धरि श्री जिनराज ॥७०॥
द्वादश व्रतमें पंच व्रत, सप्त शील परवानि।
सप्त शीलमें तीन गुण, चउ शिक्षा व्रत जानि ॥७१॥
जैसे कोट जु नगरके रक्षा कारण होय।
तैसे व्रतरक्षा निमित, शील सप्त ये जोय ॥७२॥
वरत शील धारें सुधी, ते पावें सुखराशि।
कहे व्रत्त अब शीलके, भेद कहौं परकाशि ॥७३॥
पहलो गुणवत गुणमई, छट्ठो व्रत सो जानि।
दसों दिशा परमाण करि, श्रीजिन आज्ञा मानि ॥७४॥
तीन गुणव्रतमें, प्रथम, दिग्व्रत कह्यौ जिनेश।
ताहि धरें श्रावकव्रती, त्यागें दोष असेस ॥७५॥
लोभादिक नाशन निमित्त, परिग्रहको परिमाण।
कीयौ तैसें ही करो दिशि परमान सुजाण ॥७६॥

वेसरी छन्द।

[illegible]व आदि दिशा चउ जानौं, ईशानादि विदिग चउ मानौं।
[illegible]धं उरध मिलि दस दिशि होई, करै प्रमाण व्रती है सोई ॥७७॥
[illegible]ीलवान व्रत धारक भाई, जाके दरशनतें अघ जाई।
[illegible] दिशकों एतोही जाऊं, आगे कबहु न पांव धराऊं ॥७८॥
[illegible]ा विधिसों जु दिशाको नेमा, करै सुबुद्धि धरि व्रतसों प्रेमा।
[illegible]रजादा न उलंघै जोई, दिग्व्रत धारक कहिये सोई ॥७९॥

दसों दिशाकी संख्या धारे, जिती दूरलौ गमन विचारैं ।
आग गये लाभ ह्वै भारी, तौपनि जाय न दिग्व्रत धारी ॥८०॥
सन्तोषी समभावी होई, धनकूं गिनै धूरिसम सोई ।
गमनागमन तज्यो बहु जानै, दया धर्म धार्यो उर तानैं ॥८१॥
लगै न हिंसा तिनको अधिकी, त्यागी जिन तृष्णा-धन निधिकी।
कारण हेत चालनो परई, तौ प्रमाण माफिक पग भरई ॥८२॥
मेरु डिगै परि पैंड न एका, जाय सुबुद्धी परम विवेका ।
व्रत करि नाश करै अघ कर्मा, प्रगटै परम सरावक धर्मा ॥८३॥
विना प्रतिज्ञा फल नहि कोई, रहै वात परगट अब लोई ।
अतीचार पांचों तजि वीरा, छट्ठो व्रत धारौ चित धीरा ॥८४॥
पहले ऊरध व्यतिक्रम होई, ताको त्याग करौ श्रुति जोई ।
गिरि परि अथवा मंदिर ऊपरि, चढ़नो परई ऊरध भूपरि॥८५॥
ऊरधकी संख्या ह्वै जेती, ऊंचो भूमि चढ़ै बुध तेती ।
आगै चढ़िवेको जो भावा, अतीचार पहलो सु कहावा ॥८६॥
दूजो अधव्यतिक्रम तजि मित्रा, जा तजिये व्रत होइ पवित्रा ।
वापी कूप खानि अर खाई, नीची भूमि माहिं उतराइ ॥८७॥
तौ परमाण उलंधि न उतरौ, अधिकी भू उतरयां व्रत खतरौ ।
अधिक उतरनेको जो भावा, अतीचार दूजो सु कहावा ॥८८॥
तीजो तिर्यग व्यतिक्रम त्यागौ, तब छट्टे व्रतमाहीं लागौ ।
अष्ट दिशा जे दिशि विदिशा है, तिरछे गमने माहिं गिना हैं ।८९।
बहुरि सरङ्गादिकमें जावौ, सोऊ तिरछे गमन गिनावौ ।
चउदिशि चउविदिशा परमाणा, ताको नाहिं उलंघ बखाणा ।९०।

ो अधिके जावेको भावा, अतीचार तीजो सु कहावा।
ौथो क्षेत्रवृद्धि है दूपन, ताको त्याग करें व्रतभूपन ॥९१॥
तो दूर जानका नेमा, सो स्वक्षेत्र भाषें श्रुतिप्रेमा।
ो स्वक्षेत्रतें बाहिर ठौरा, सो परक्षेत्र कहावे औरा ॥९२॥
तो परक्षेत्र थकी इह संधा, राखे सठमति हिरदे अंधा।
ूवांते क्रय विक्रय जो राखै, क्षेत्रवृद्धि दूपण गुरु भाखें ॥९३॥
ञ्चम अतीचारको नामा, स्मृत्यंतर भासे श्रीरामा।
ाको अर्थ सुनो मनलाई, करि परमाण भूलि जो जाई ॥९४॥
जानत और अजानत मूढ़ा, सो नहिं होई व्रत आरूढ़ा।
ए पांचूं दोपा जे टारें, ते व्रत निर्मल निश्चल धारें ॥९५॥
श्री कहिये निजज्ञान विभूती, शुद्ध चेतना निज अनुभूती।
केवल सत्ता शुद्ध स्वभावा, आतमपरणति रहित विभावा ॥९६॥
ता परणतिसों रमिया जोई, कर्मरहित श्रीराम जु होई।
तिनकी आज्ञारूप जु धर्मा, धारें ते नाशें सव भर्मा ॥९७॥
अव सुनि व्रत्त सातमों भाई, जो दूजो गुणवृत्त कहाई।
दिशा तणों कियो परिमाणा, तामें देश प्रमाण वखाणा ॥९८॥
देश नगर अर गांव इत्यादी, अथवा पाटक हाट जु आदी।
पाटक कहिये अध जु ग्रामा, करें प्रमाण व्रती गुण धामा ॥९९॥
जिन देशनिमें धर्म जु नाहीं, जाय नहीं तिन देशनि माहीं।
जव वह वहु देशनितें छूटै, तव यासों अति लोभ जु टूटै ॥१००॥
वहु हिंसा आरंभ निवर्त्यो, जीवदया मन माहिं प्रवर्त्यो।
दिश अरु देशनिको जु प्रमाणा, लोभ नाशने निमित्त वखाना ॥१॥

जिनवर मुनिवर अर जिन धामा, जिनप्रतिमा अर तीरथठामा।
यात्राकाज गमन निरदोषा, दीप अढ़ाई लौं वृतपोसा ॥२॥
अतीचार पांचों तजि धीरा, जाकरि देश वृत ह्वै धीरा।
चित परसत रोकनके कारन, मन वच तन मरजादा धारन ॥३॥
कबहूं नहिं उलंघि सु जाई, अर ह्वांतैं आसा न धराई।
प्रेष्य नाम है सेवकको जी, तहि पठावो जा अधिको जी ॥४॥
वस्तु भेजिवौ लोभ निमित्ता, प्रेष्य प्रयोग दोष है मित्ता।
तातें जेतौ देश जु राख्यौ, भृत्य भेजिवौ ह्वां तक राख्यौ ॥५॥
आगे वस्तु पठैवौ नाहीं, इह बातें धारौ उर माहीं।
दूजो दोष आनयन त्यागै, तब हि वृत विधानहिं लागै ॥६॥
परक्षेत्र जु तें वस्तु मंगावै, सो गुणव्रतको दूषण लावै।
जो परमाण बाहिरा ठौरा, सा परक्षेत्र कहैं जषमौरा ॥७॥
तीजो दोप शब्द विनिपाता, ताको भेद सुनों तुम भ्राता।
जब नहीं परि शब्द सुनावै, सो निरदूषण व्रत्त न पावै ॥८॥
चौथा दूषण रूपनिपाता, रूप दिखावण जागि न बाता।
पंचम पुद्गलक्षेप कहावै, कंकर आदिक जोहि बगावै ॥९॥

भावार्थ —

दिशा अर देशको जावज्जीव नियम कियो छै, तीहूमें वर्ष छमासी दुमासी मासी पाखी नेम धार्‌यो छै, तीमें भी निति नेम करै छै। सो निति नेम मरजादामें क्षेत्र निपट थोड़ा राख्यो सो गमन तो मरजादा बाहिर क्षेत्रमें न करै परि हेलौ मारि सबद सुनावै अथवा जिह तरफ जिह प्रानीसो प्रयोजन होय

तिह तरफ झांकि झरोकादिकमें बैठि करि तिंह प्राणीनें अपना रूप दिखाय प्रयोजन जणावे अथवा कंकर इत्यादि वगाय पैलाने मतलब जतावै सो अतीचार लगाय मलीन करै।

बेसरी छन्द।

अब सुनि वरत आठमो भाई, तीजो गुणव्रत अति सुखदाई।
अनरथदण्ड पापको त्यागा, यह व्रत धारें ते बड़भागा ॥१०॥
पंच भेद हैं अनरथदोषा, महापापके जानहु पोषा।
पहलो दुर्ध्यान जु दुखदाई, ताको भेद सुनों मनलाई ॥११॥
पर औगुण गहणा उरमाहीं, परलक्ष्मी अभिलाष धराहीं।
परनारी अवलोकन इच्छा, इन दोषनतें सुधी अनिच्छा ॥१२॥
कलह करावन करन जु चाहैं, वहुरि अहेरा करन उमा है।
हारि जाति चितवै काहूको, करै नहीं भक्ति जु साहूको ॥१३॥
चौर्यादिक चितवें मनमाहीं, दुरगति पावे है शक नाहीं।
दूजो पापतनों उपदेशा, सो अनरथ तजि भजै जिनेशा ॥१४॥
कृषि पसु धन्धा वणिज इत्यादी, पुरुष नारि संजोग करादी।
मंत्र यंत्र तंत्रादिक सर्वा, तजौ पापकर वचन सगर्वा ॥१५॥
सिंगारादिक लिखन लिखावन, राजकाज उपदेश बतावन।
सिलपि करम आदिक उपदेशा, तजो पाप कारिज उपदेशा ॥१६॥
तजहू अनरथ विफला चरज्या, सो त्यागौ श्रीगुरुनें वरज्या।
भूमिखनन अरु पानी ढारन, अगनि प्रजालन पवन विलोरन ॥१७
वनसपती छेदन जो करनों, सो विफला चरज्याको धरनों।
हरित तृणांकुर दल फल फूला, इनको छेदन अघको मूला ॥१८॥

अब सुनि चोथो अनरथदण्डा, जा करि पावौ कुगति प्रचण्डा।
दया दान करिवा जु निरंतर, इह बातां धारौ उर अन्तर ॥१६॥
हिंसादान नाम है जाको, त्याग करो तुम बुध जन ताको।
छुरी कटारी खड्गरु भाला, जूती आदिक देहिन लाला ॥२०॥
विष नहि देवौ अगनि न देनीं, हल फाल्यादिक दे नहिं जैनी।
धनुषवान नहि देनौं काकौं, जो दे अघ लागै अति ताकौं ॥२१॥
हिंसाकारक जेती वस्तू, सो देवो तौ नाहिं प्रसस्तू।
बध बंधन छेदन उपकरणा, तिनको दान दयाको हरणा ॥२२॥
पापवस्तु मांगी नहिं देवै, जो देवै सो शुभ नहिं लेवै।
जामें जीवनिको उपकारी, सौ देवौ सबकौं हितकारी ॥२३॥
अन्नवस्त्र जल औषध आदि, देवौ श्रुतमें कह्यो अनादि।
दान समान न आनजु कोई, दयादान सबके सिर होई ॥२४॥
मंजारादिक दुष्ट सुभावा, मांस अहारी मलिन कुभावा।
तिनको धारन कबहू न करनौं, जीवनिकी हिंसातें डरनौं ॥२५॥
नखिया पखिया हिंसक जेही, धर्मवंत पालै नहि तेही।
आयुधिको व्यापार न कोई, जाकरि जीवनको बध होई ॥२६॥
शीसा लोह लाख साबुन ए, बनिजजोग नहिं अघकारन ए।
जेती बस्तु सदोप बताई, तिनको बनिज त्यागै भाई ॥२७॥
धान पान मिष्टादि रसादिक, लवण हींग घृत तेल इत्यादिक।
दल फल तृण पहुपादिक कंदा, मधु मादिक विणिजै मतिमंदा ॥
अतर फुलेल सुगन्ध समस्ता, इनको बणिज न हो प्रशस्ता।
तथा आयोग्य मोम हरतारैं, हिंसाकारन उद्यम टारैं ॥२८॥

बध बंधनके कारिज जेते, त्यागहु पाप विणज तुम तेते।
पशु पंखी नर नारी भाई, इनको विणज महा दुखदाई ॥३०॥
काष्टादिकको विणज न करै, धर्म अहिंसा उरमें धरै।
ए सब कुविणज छांड़े जोई, धरम सरावक धारै सोई ॥३१॥
मूलगुणनिमें निंदे एई, अष्टम व्रतमें निंदे तेई।
बार बार यह विणज जु निंद्या, इनकूं त्यागै ते नर वंद्या ॥३२॥
सुवरण रूपा रतन प्रशस्ता, रूई कपड़ा आदि सुवस्ता।
विणज करै तौ ए करि मित्रा, सब तजौ अति ही अपवित्रा ३३
सुनों पांचमो और अनर्था, जे शठ सुनहिं मिथ्यामत अर्था।
एह कुसूत्र सुणवौ अघ मोटा, और पाप सब यातैं छोटा ॥३४॥
पाप सकल उपजें या सेती, उपजै कुवुधि जगतमें तेती।
अंडिम बात सुनों मति भाई, वसीकरण आदिक दुखदाई ॥३५॥
वसीकरण मनको करि संता, मन जीत्या है ज्ञान अनंता।
कामकथा सुनिवौ नहि कबहू, भूलै घनें चेत परि अबहू ॥३६॥
परनिन्दा सुनियां अति पापा, निन्दक लहै नरक संतापा।
कबहुं न करिवौ राग अलापा, दोप त्यागिवौ होय निपापा ॥३७॥
विकथा करिवो जोगि न वीरा, धर्मकथा सुनिवौ शुभ धीरा।
आलवाल करिवो नहिं जोग्या, गालि काढ़िवौ महा अजोग्या ।३८।
विना जेनवानीं सुखदानी, और चित्त धरिवौ नहिं प्रानी।
केवलि श्रुतकेवलिकी आणा, ताकों लागै परम सुजाणा ॥३९॥
ते पावें निर्वाण मुनीशा, अजरामर होवें जोगीशा।
सीख श्रवण रचना कुकथाको, नहीं करौ जु कदापि वृथाको ।४०।

जीवदयामय जिनवरपंथा, धारैं श्रावक अर निरग्रन्था।
काम क्रोध मद छल लोभादी, टारैं जैनी जन रागादी ॥४१॥
आगम अध्यातम जिनवानी, जाहि निरूपें केवल ज्ञानी।
ताकी श्रद्धा दिढ़ धरि धीरा, करणगोचरी कर वर वीरा ॥४२॥
जाकरि छूटै सर्व अनर्था, लहिये केवल आतम अर्था।
धर्म धारणा धारि अखण्डा, तजो सर्व ही अनरथदंडा ॥४३॥
इन पंचनिके भेद अनेका, त्यागौ सुबुधी धारि विवेका।
बड़ो अनर्थ दण्ड है दूजो, यातें सर्व पाप नहिं दूजो ॥४४॥
या सम और न अनरथ कोई, सकल वरतको नाशक होई।
द्यूत कर्मके विसन न लागैं, तब सब पाप पन्थतें भागैं ॥४५॥
द्यूतकर्ममें नाहि बड़ाई, जाकरि बूड़ै भवमें भाई।
अनरथ तजिवौ अष्टम व्रत्ता, तीजो गुणव्रत पापनिवृत्ता ॥४६॥
ताके अतीचार तजि पंचा, तिन तजियां अघ रहै न रंचा।
पहलो अतीचार कंदर्पा, ताको भेद सुनो तजि दर्पा ॥४७॥
कामोद्दीपक कुकथा जोई, ताहि तजै बुधजन है सोई।
कौतकुत्य है दोष द्वितीया, ताको त्याग व्रतनिनें कीया ॥४८॥
वदन मोरिवौ बांकी करिवौ, भौंह नचैवौ मच्छर धरिवौ।
नयनादिकको जो हि चलावौ, विषयादिकमें मन भटकावौ ॥४९॥
इत्यादिकजे भंडिम वार्तें, तजौ व्रती जे सुव्रत घार्तें।
कौतकुच्यको अर्थ बखानो, फुनि सुनि तीजा दोष प्रवानों ॥५०॥
भोगानर्थक है अति पापा, जाकरि पइये दुर्गति तापा।
ताकों सदा सर्वदा त्यागो, श्रीजिनवरके मारग लागो ॥५१॥

बहुत मोल दे भोगुपभोगा, सेवै सो पावै दुख रोगा।
भोगुपभोगथकी यह प्रीती, सो जानों अधिकी विपरीती ॥५२॥
बहुरि भूखतें अधिकों भोजन, जल पीवौ जो विनहि प्रयोजन।
शक्ति नहीं अति नारी सेवौ, करि उपाय मैथुन उपजेवौ ॥५३॥
वृथा फूल फल पानादिक जे, बाधा करै लहैं शठ अघ जे।
इत्यादिक जे भोगै अर्था, जो सेवौ सो लहै अनर्था ॥५४॥
है मौखर्य चतुर्था दोषा, ताहि तजै श्रावक व्रतपोषा।
जो वाचालपनाको भावा, सो मौखर्य कहैं मुनिरावा ॥५५॥
विना विचारयौ अधिको बकिवो, झूठ वाकजालमें छकिवौ।
असमीक्षित अधिकर्ण जु वीरा, अतीचार पंचम तजि धीरा॥५६॥
विन देख्यां विन पूछयौ कोई, घट्टी मूसल उखली जोई।
कछु भो उपकरण विन देख्या, विन पूंछयां गृहिवो न असेखा।५७
तब हिंसा टरिहैं परवीना, हिंसातुल्य अनर्थ न लीना।
ए सब अष्टम वृतके दोषा, करै जु पापी व्रतकों सोखा ॥५८॥
इन तजिसी वृत निर्मल होई, तातैं तजै धन्य है सोई।
गुणव्रत काहेतैं सु कहावे, ताको अर्थ सुनों मनलाये ॥५९॥
पच अणुव्रतकों गुणकारी, तातैं गुणवृत नाम जु धारी।
जैसैं नगृतनैं ह्वै कोटा, तैसें वृत रक्षक ए मोटा ॥६०॥
क्षेत्रनि होय वाड़ि जो जैसे, पंचनिके ए तीनूं तैसें।
अब सुनि चउ शिक्षावृत मित्रा, जिनकरि होवें अष्ट पवित्रा।६१
अष्टनिकों संख्या दायक ए, ज्ञानमूल तप वृत नायक ए।
नवमो वृत पहिलो शिक्षावृत, चित्त धीर धर धारहु अणुवृत।

सामायक है नाम जु ताको, धारन करत सुधीजन याकों।
सामायक शिवदायक होई, या सम नाहिं क्रिया निधि कोई।

दोहा—प्रथमहिं सातों शुद्धता, भासों श्रुत अनुसार।
जिनकरि सामायक विमल,-होय महा अविकार ॥६४॥
क्षेत्र काल आसन विनय, मन वच काय गनेहु।
सामायक की शुद्धता, सात चित्त धरि लेहु ॥६५॥
जहां शब्द कलकल नहीं, बहुजनको न मिलाप।
दंसादिक प्राणी नहीं, ता क्षेत्रे करि जाप ॥६६॥
क्षेत्र शुद्धता इह कही, अब सुनि काल विशुद्धि।
प्रात दुपहरां सांझकों, करै सदा सद्बुद्धि ॥६७॥
षट षट घटिका जो करै, सो उतकिष्टी रीति।
चउ चउ घटिका मध्य है, कर शुद्धि धरि प्रीति ॥६८॥
द्वै द्वै घटिका जघनि है, जेता थिरता होइ।
तेती वेला योग्य है, या सम और न कोइ ॥६९॥
धरै सुधी एकागृता, मन लावै जिनमाहिं।
यहै शुद्धता कालकी समै उलंघै नाहिं ॥७०॥
तीजी आसन शुद्धता, ताको सुनहु विचार।
पल्यंकासन धारिकै, ध्यावें त्रिभुवन सार ॥७१॥
अथवा काऊसर्ग करि, सामायक करतव्य।
तजि इंद्रिय व्यापार सहु, ह्वै निश्चल जन भव्य ॥७२॥
विनय शुद्धता है भया, चौथी जिनश्रुति माहिं।
जिन वचमें एकागृता, और विकल्पा नाहिं ॥७३॥

हाथ जोडि आधीन ह्वै, शिर नवाय दे ढोक ।
तन मन करि दासा भयौ, सुमरै प्रभु तजि शोक ॥७४॥
विनय समान न धर्म कोउ, सामायकको मूल ।
अब सुन मनकी शुद्धता, ह्वै व्रतसों अनुकूल ॥७५॥
मन लावै जिनरूपसों, अथवा जिनपद माहि ।
सो मन शुद्धि जु पञ्चमो, यामें संसै नाहिं ॥७६॥
छट्ठी वचन विशुद्धता, विन सामायक और ।
वचन कदापि न वोलिये, इह भाषैं जग मौर ॥७७॥
काय शुद्धता सातमी, ताको सुनहु विचार ।
काय कुचेष्टा नहि करै, हस्त पदादिक सार ॥७८॥
क्षत्र प्रमाण कियौ जिनै, तजे पापके जोग ।
मुनि सम निश्चल होयकै, करै जाप भविलोग ॥७९॥
राग दोषके त्यागतें, समता सब परि होइ ।
ममताकों परिहार जो सामायक है सोइ ॥८०॥
सामायक अहनिसि करैं, ते पावैं भवपार ।
सामायक सम दूसरो, और न जगमें सार ॥८१॥
राति दिवस करनों उचित, बहु थिरता नहिं होय ।
तौहु त्रिकाल न टारिवौ, यह धारैं बुध सोय ॥८२॥
जो सामायकके समय, थिरता गहै सुआन ।
अणुव्रत धारै सो सुधी, तौपनि साधु समान ॥८३॥

छन्द चाल

सामायक सो नहिं मित्रा, दूजो अन कोई पवित्रा।
गृहपतिकों जतिपति तुल्या, करई इह व्रत जु अतुल्यो ॥८४॥
तसु अतीचार तजि पंचा, जब होइ सामायक सचा।
मन वच तन दुःप्रणिधाना, तिनको मुनि भेद वखाना ॥८५॥
जो पाप काज चिंतवना, सो मनको दूषण गिनना।
फुनि पाप वचनको कहिवो, सो वचन व्यतिक्रम लहिवौ ॥८६॥
सामायक समये भाई, जो कर चरणादि चलाई।
सो तनको दोष बतायो, सतगुरुने ज्ञान दिखायो ॥८७॥
चौथो जु अनादर नामा, है अतीचार अघधामा।
आदर नहिं सामायकको, निश्चै नहिं जिननायकको ॥८८॥
समरण अनुपस्थाना है, इह पंचम दोष गिना है।
ताको सुनि अर्थ विचारा, समरणमें भूलि प्रचारा ॥८९॥
नहिं पूरो पाठ पढै जो, परिपूरण नाहिं जपै जो।
कछुको कछु बोलैं बाला, सो सामासक नहिं काला ॥९०॥
ए पञ्च अतीचारा है, सामायक में टारा हैं।
समता सब जीवन सेती, संजम सुभ भावन लेती ॥९१॥
आरति अरु रौद्र जु त्यागा, सो सामायक बड़भागा।
सामायक धारौ भाई, जाकरि भवपार लहाई ॥९२॥

वेसरी छन्द

क्षमा करौ हमसों सब जीवा, सबसों हमरी क्षमा सदीवा।
सर्व भूत है मित्र हमारे, वैर भाव सबहीं सो टारे ॥९३॥

सदा अकेलो मै अविनाशा, ज्ञान-सुदर्शन रूप प्रकाशी ।
और सकल जो हैं परभावा, ते सब मोतें भिन्न लखावा ॥९४॥
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अखंडा, गुण अनन्तरूपी परचंडा ।
कर्मबन्धते रुलै अनादी, भटका भवबन माहिं जुवादी ॥९५॥
जब देखै अपनों निजरूपा, तब होवो निर्वाण सरूपा ।
या संसार असार मंझारे, एक न सुखकी ठौर करारे ॥९६॥
यहै भावना नित्त भावंतो, लहैं आपनों भाव अनंतो ।
अब सुनि पोसहकी विधि भाई, जो दमयोवून है सुखदाई ॥९७॥
दूजा शिक्षावृत अति उत्तम, याहि धरें तेई जु नरोत्तम ।
न्यावन लेपन भूपन नारी,—संगति गंध धूपनहिं कारी ॥९८॥
दीपादिक उद्योत न होई, जानहु पोसहकी विधि सोई ।
एक मासमें चउ उपवासा, द्वै अष्टमि द्वै चउदसि मासा ॥९९॥
षोड़ष पहर धारनो पोसा, विधिपूर्वक निर्मल निर्दोषा ।
सामायककी सा जु अवस्था, षोड़श पहर धारनी स्वस्था ॥१००॥
पासह करि निश्चल सामायक, होवै यह भासे जगनायक ।
पोसक सामायक को जोई, पोसह नाम कहावै सोई ॥१॥
जे सठ चउ उपवास न धारें, ते पशु तुल्य मनुष भव हारें ।
बहुत करै तो बहुत भला है, पोसा तुल्य न और कला है ॥२॥
चउ टारै चउगतिके माहीं, भरमें यामें संसय नाहीं ।
द्वै उपवासा पखवारेमें, इह आज्ञा जिनमत भारेमें ॥३॥
वृतकी रीति सुनो, मनलाये, जाकरि चेतन तत्त्व लखाये ।
सप्तमि तेरसि धारन धारै, करि जिन पूजा पातिगटारैम ॥४॥

एक भुक्त करि दो पहरांतैं, तजि आरम्भ रहै एकांतैं।
नहिं ममता देहादिक सेती, धरिसमता बहु गुणहिं समेती॥५॥
चउ आहार चउ विकथा टारै, चउ कषाय तजि समता धारै।
धरमी ध्यानारूढ़मती सो, जगत उदास शुद्धवरती सो॥६॥
स्त्री पशु पढ बालकी संगति, तजि करि उरमें धारै सनमति।
जिनमंदिर अथवा वन उपवन, तथा मसानभूमिमें इक तन॥७॥
अथवा और ठौर एकान्ता, भजै एक चिद्रूप महंता।
सर्व पाप जोगनितैं न्यारा, सर्व भोग तजि पोसह धारा।८॥
मन वच काय गुप्ति धरि ज्ञानी, परमातम सुमरे निरमानी।
या विधि धारण दिन करि पूरा, संध्या करै सांझकी सूरा॥९॥
सुधि संथारे रात्रि गुमावै, निद्राको लवलेश न आवै।
कै अपनों निजरूप चितारै, कै जिनवर चरणा चित धारैं॥१०॥
कै जिनविम्ब निरखई मनमें, भूल न ममता धरई तनमें।
अथवा ओंकार अपारा, जपै निरंतर धीरज धारा॥११॥
नमोकार ध्यावै नर मित्रा, भयो भर्मतें रहित स्वतंत्रा।
जगविरक्त जिनमत आसक्तो, सकल मित्र जिनपति अनुरक्तो १२
कर्म शुभाशुभको जु विपाका, ताहि विचारै नाथ क्षमाका।
जिनकों जानै सबतें भिन्ना, गुण-गुणिकों मानै जु अभिन्ना १३
इस चितवनतें परम सुखी जो, भववासिन सो नाहिं दुखी जो।
पंच परमपदको अति दासा, इन्द्रादिक पदतेंहु उदासा॥१४॥
रात्रि धारनाकी या विधिसों, पूरी करै भरयो व्रतनिधिसों।
फुनि प्रभात संध्या करि वीरा, दिन उपवास ध्यानधरि धीरा।१५

पूरो करै धर्मसों जोई, संध्या करै सांझकों सोई।
निशि उपवासतणी व्रतधारी, पूरी करै ध्यानसों सारी ॥१६॥
करि प्रभात सामायक सुबुधी, जाके घटमें रञ्च न कुबुधी।
धारण दिवस करै जिनपूजा, प्रासुक द्रव्य और नहिं दूजा ॥१७॥
अष्ट द्रव्य ले प्रासुक भाई, श्री जिनवरकी पूज रचाई।
पात्रदान करि दो पहरां जे, करै पारणूं आप घरां जे ॥१८॥
वा दिन हू यह रीति बताई, ठौर आहार अल्प जल पाई।
धारन पारन अर उपवासा, तीन दिवसलों वरत निवासा ॥१९॥
भूमिशयन शीलव्रत धारै, मन वच तन करि तजैं विकारै।
इह उतकृष्टी पोसह विधि है, या पोसह सम और न निधि है २०
मध्य जु पोसह बारह पहरा, जघनि आठ पहरा गुण गहरा।
अतीचार याके तजि पंचा, जाकरि छूटै सर्व प्रपंचा ॥ २१ ॥
विन देखा विन पूंछे वस्तू, ताको गृहिवौ नाहिं प्रशस्तु।
गृहिवौ अतीचार पहलो है, ताको त्यागसु अतिहि भलो है ।२२
विन देखे विन पूंछे भाई, संथांरे नहिं शयन कराई।
अतीचार छटै तब दूजो, इह आज्ञा धरि जिनवर पूजो ॥२३॥
विन देखो विन पूंछो जागा, मल मूत्रादिक न कर वड़भागा
करिवो अतीचार है तीजौ, सर्व पाप तजि पोसह लीजो ॥२४॥
सर्व दिनाको भूलन चौथो, अतीचार यह गुणतें चौथो।
बहुरि अनादर पञ्चम दोषा, पोसहको नहिं आदर पोषा ॥२५॥
ये पांचो तजियां ह्वै पोषा, निरमल निश्चल अति निरदोषा।
सामायक पोषह जयवंता, जिनवर कहये श्रीभगवन्ता ॥२६

मुनि होनेको एहि अभ्यासा, इन सम और न कोइ अभ्यासा।
भुक्ति मुक्ति दायक ये व्रत्ता, धन्य धन्य जे करहिं प्रवृत्ता ॥२७॥
अब सुनि व्रत ग्यारमो मित्रा, तीजो शिक्षाव्रत पवित्रा।
जे भोगोपभोग हैं जगके, ते सहु बटमारे जिनमगके ॥२८॥
त्याग जाग हैं सकल विनासी, जो शठ इनको होय विलासी।
सो रुलिहैं भवसागर माहीं, यामें कछू संदेहा नाहीं ॥२९॥
एक अनंतो नित्य निजातम, रहित भोग उपभोग महातम।
भोजन तांबूलादि भोगा, वनिता वस्त्र आदि उपभोगा ॥३०॥
एकवार भोगनमें आवै, ते सहु भोगा नाम कहावै।
बार बार जे भोगो जाई, ते उपभोगा जानहु भाई ॥३१॥
भोगुपभोग तनों यह अर्था, इन सम और न कोइ अनर्था।
भोगुपभोग तनों परमाणा, सो तीजो शिक्षाव्रत जाणा ॥३२॥
छत्ता भोग त्यागे वड़भागा, तिनके इन्द्रादिक पद लागा।
अछताहून तजें जे मूढ़ा, ते नहिं होय व्रत्त आरूढ़ा ॥३३॥
करि प्रमाण आजन्म इनूंका, बहुरि नित्य नियमादि तिनूंका।
गृहपतिके थावरकी हिंसा, इन करि ह्वै फुनि तज्या अहिंसा ॥३४॥
त्याग बराबर धर्म न कोई, हिंसाको नाशक यह होई।
अंग विषें नहिं जिनके रङ्गा, तिनके कैसे होय अनङ्गा ॥३५॥
मुख्य बारता त्याग जु भाई, त्याग समान न और बड़ाई।
त्याग बनै नहिं तौहु प्रमाणा तामें इह आज्ञा परवाणा ॥३६॥
भोग अजुक्त न करनें कोई, तजनें मन बच तन करि सोई।
जुक्त भोगको करि परमाणा, ताहूमें नित नेम बखाणा ॥३७॥

नियम करौ जु घराहि घराका, त्याग करौ सबहा जु हरीको ।
जे अनंतकाया दुखदाया, ते साधारण त्याग कराया ॥ ३८ ॥
पत्र जाति अर कंद समूला, तजनें फूलजाति अघ थूला ।
तजनें मद्य मांस नवनीता, सहत त्यागिवौ कहैं अजीता ॥३९॥
तजनें कांजी आदि सबैही, अत्थाणा संधाण तजेही ।
तजनें परदारारिक पापा, तजिवौ परधन पर संतापा ॥ ४० ॥
इत्यादिक जे वस्तु निरुद्धा, तिनकों त्यागै सो प्रतिबुद्धा ।
सबही तजिबो महा अशुद्धा, अर जे भोगा हैं अविरुद्धा ॥४१॥
भोग भावमें नाहिं भलाई, भोग त्यागि हूजौ शिवराई ।
अपने गुण पर जाय स्वरूपा, तिनमें राचै हित विरूपा ॥४२॥
वस्त्राभरण व्याहता नारी, खान पान निरदूषण कारी ।
इत्यादिकजे अविरुध भोगा, तिनहूको जानै ए रोगा ॥४३॥
जो न सर्वथा तजिया जाई, तौ परमाण करौ बहु भाई ।
सर्व त्यागवौ कहैं विवेकी, गृहपतिके कछु इक अविवेकी ॥४४॥
तौ लगि भोगुपभोगहि अल्पा, विधिरूपा धारै अविकल्पा ।
मुनिके खान पान इकवारा, सोहू दोष छियालिस टारा ॥४५॥
और न एको है जु विकारा, तातैं महाव्रती अणगारा ।
तजै भोगउपभोग सबैही, मुनिवरका शुभ विरद फबैहा ॥४६॥
शक्ति प्रमाण गृही हू त्यागै, त्याग बिना वृतमें नहिं लागै ।
राति दिवसक नेम विचारै, यम नियमादि धरै अघ टारै ॥४७॥
यम कहिये आजन्म जु त्यागा, नियम नाम मरजादा लागा ।
यम नियमादि बिना नर देही, वसुहूतें मूरख गनि एही ॥४८॥

खान पान दिनहीको मरनों, रात्रि चतुर्विधआहार हि तजनों ।
नारी सेवै रैनि विषै ही, दिनमें मैथुन नाहि कवैही ॥४९॥
लिसि ही नितप्रति करनों नाहीं, त्याग विराग विवेक धराहीं ।
नियम माहि करनों नितनेमा, सीम माहि सीमाको प्रेमा ॥५०॥
करि प्रमाण भोगनिको भाई, इन्द्रिनको नहि प्रवल कराई ।
जैसे फणिकूं दूध जु प्यावौ, गुणकारी नहिं विष उपजावो ।५१।
जो तजि भोग भाव अधिकाई, अलपभोग संतोष धराई ।
सो बहुती हिंसातें छूट्यौ, मोहवतें नहि जाय जु लूट्यौ ॥५२॥
दया भाव उपजो घट ताके, भोगभावकी प्रीति न जाके ।
भोगुपभोग पापके मूला, इनकूं सेवैं ते भ्रम भूला ॥५३॥
दोहा—हिंसाके कारण कहे, सर्व भोग उपभोग ।
इनको त्याग करै सुधी, दयावंत भवि लोग ॥५४॥
सो श्रावक मुनि सारिखा, भोग अरुचि परणाम ।
समता धरि सब जीव परि, जिनको क्रोध न काम।५५।
भोगुपभोग प्रमाण सम, नहि दूसरो और ।
तृष्णाको क्षयकार जो, है व्रतनि सिरमौर ॥५६॥
अतीचार या व्रतको, तजो पंच दुखदाय ।
तिन तजियां व्रत विमल ह्वै, लहिये श्रीजिनराय ।५७।
नियम कियौ जु सचित्तको, भूलिर करैं अहार ।
सो पहलो दूषण भयो, तजि हूजे अविकार ॥५८॥
प्रासुक वस्तु सचित्तसौं, मिश्रित कवहूं होय ।
उष्ण जल जु सीतल उदक, मिल्यो न लेवौ कोय ।५९।

गृहें दोष दूजो लगे, अब मुनि तीजो दोष ।
जो सचित्त संबंध है, तजो पापको पोष ॥६०॥
पातल दूनां आदि जे, वस्तु सचित्त अनेक ।
तिनसों ढक्यो अहार जो, जीमें सो अविवेक ॥६१॥
मुनि चौथो दूषण सुधी, नाम जु अभिषव जास ।
याको अर्थ अजोगि, जे न भखे जिनदास ॥६२॥
अथवा काम उदीपका, भोजन अतिहि अजोगि ।
ते कबहु करनें नहीं, बरजें देव अरोगि ॥६३॥
बहुरि तजो बुध पंचमों, अतीचार अघरूप ।
दुःपक्वा आहार जो अव्रतको जु स्वरूप ॥६४॥
अति दुर्जर आहार जो, वस्तु गरिष्ट सु होय ।
नहीं जोगि जिनवर कहै, तजें धन्नि हैं सोय ॥६५॥
कछु पक्यो कछु अपक्व हो, मुखसों पचै जु कोय ।
सो नहि लेवो व्रत्तनिकों, यह जिन आज्ञा होय ॥६६॥
अतीचार पांचो तज्या, व्रत निर्मल है वीर ।
निर्मल वृत्तप्रभावतें, लहै ज्ञान गंभीर ॥६७॥

छन्द चाल

धरि बरत बारमा मित्रा, जो अतिथि विभाग पवित्रा ।
इह चौथो शिक्षाव्रत्ता, जे याकों करें प्रवृत्ता ॥६७॥
ते पावें सुर शिव भूती, वा भोगभूमी परसूती ।
सुनि या व्रतको विधि भाई, जो विधि जिनसूत्र बताई ॥६८॥

त्रिविधा हि सुपात्रा जगमें, जगका नौका जिनमगमें ।
महाव्रत अणुव्रत समदृष्टी, जिनके घट अमृतवृष्टी ॥६९॥
तिनकों वहुधा भक्तीतें, श्रद्धादि गुणनि जुती तैं ।
देवो चउदान सदा जो सो है व्रत द्वादशमो जो ॥७०॥
चउदान सबोंमें सारा, इनसे नहि दान अपारा ।
भोजन औषध अरु नाना, फुनि दान अभै परवाना ॥७१॥
भोजन दानहिं धन पावै, औषध करि रोग न आवै ।
श्रुतिदान बोध जु लहाई, इह आज्ञा श्रीजिनगाई ॥७२॥
अभया है अभय प्रदाता, भाषें प्रभु केवल ज्ञाता ।
इक भोजन दानें माहीं, चउ दान सधैं शक नाहीं ॥७३॥
नहिं भूख समान न व्याधी, भव माहीं वड़ी उपाधी ।
तातें भोजनसों अन्या, नहिं दूजी औषध धन्या ॥७४॥
फुनि भोजनबल करि साधू, करई जिन सूत्र अराधू ।
भोजनतें प्राण अधारा, भोजनतें थिरता धारा ॥७५॥
तातें चउ दान सधेहैं, दानें करि पुण्य वंधे हैं ।
सो सहु वांछा तजि ज्ञानी, होवौ दानी गुणखानी ॥७६॥
इह भव पर भवको भोगा, चाहैं नहिं जानहिं रोगा ।
दे भक्ति करि सुपात्रनकों, निजरूप ज्ञान मात्रनिकों ॥७७॥
तिह रतनत्रयमें संघो, थाप्यौ चउविधिको संघो ।
सो पावै भुक्ति विमुक्ती, इह केवलि भाषित उक्ती ॥७८॥
नहिं दान समान जु कोई, सब व्रतको मूल जु होई ।
यासें भविजन चित धारो, संसार पार जो चाहो ॥७९॥

जो भाषे त्रिविधा पात्रा, तिनिमें मुनि उत्तम पात्रा ।
हैं मध्यम पात्र अणुव्रती, समदृष्टी जघन्य अव्रती ॥८०॥
इन तीननिके नव भेदा, भाषे गुरु पाप उछेदा ।
उत्तममें तीन प्रकारा, उतकृष्ट मध्य लघु धारा ॥८१॥
उत्तम तीर्थंकर साधू, मध्य सु गणधर आराधू ।
तिनतें लघु मुनिवर सर्वे, जे तप व्रतसूं नहि गर्वे ॥८२॥
ए त्रिविध उत्तमा पात्रा, तप संजम शील सुमात्रा ।
तिनकी करि भक्ति सु वीरा, उतरैं जा करि भवनीरा ॥८३॥
मुनिवर होवे निरगंथा, चालै जिनवरके पंथा ।
जो विरकत भव भोगनितें, राग न दोष न लोगनितें ॥८४॥
विश्राम आपमें पायौ, काहूमें चित्त न लायौ ।
रहनों नहिं एकै ठौरा, करनों नहि कारिज औरा ॥८५॥
धरनूं निज आतम ध्यान, हरनूं रागादि अज्ञान ।
नहिं मुनिसे जगमें कोई, उतरें भगमागर सोई ॥८६॥
दोहा—मोह कर्मकी प्रकृति सहु, होय जु अट्ठाईस ।
तिनमें पन्द्रह उपसमें, तब होवै जोगीस ॥८७॥
पन्द्रा रोकें मुनिव्रतें, ग्यारा अणुव्रत रोध ।
सात जु रोकें पापिनी, सम्यक दरशन बोध ॥८८॥
क्रोध मान छल लोभ ए, जीवोंको दुखदाय ।
सो चंडाल जु चाकरी, वरजें श्रीजिनराय ॥८९॥
अनंतानुबन्धी प्रथम, द्वितीय अप्रत्याख्यान ।
प्रत्याख्यान जु तीसरी, अर चौथ संजू लान ॥९०॥

तिनमें तीन जु चौकरी, अर तीव्र मिथ्यात ।
एपंदरा प्रकृतियां, तजि व्रत होइ विख्यात ॥९१॥
पहली दूजी चौकरी, बहुरि मिथ्यात जु तीन ।
ए ग्यारां प्रकृती गया, श्रावकव्रत लवलीन ॥९२॥
प्रथम चौकरी दूजी हतें, टरें तीन मिथ्यात ।
ये सातों प्रकृती टरयां, उपजै सम्यक भ्रात ॥९३॥
तीन चौकरी मुनिव्रतें, द्वै अणुव्रत विधान ।
पहली रोकें सम्यका, चौथी केवलज्ञान ॥९४॥
तीन मिथ्यात हतें महा, मुनिव्रत अर अणुवृत्त ।
अव्रत सम्यकक्तं हतें, करहिं अधर्म प्रवृत्त ॥९५॥
प्रथम मिथ्यात अबोध अति, जहां न निज परबोध ।
धर्म अधर्म विचार नहिं, तीव्र लोभ अर क्रोध ॥९६॥
दूजी मिश्र मिथ्यात है, कछु इक बोध प्रबोध ।
तीजी सम्यक प्रकृति जो, वेदक सम्यक बोध ॥९७॥
कछु चंचक कछु मलिन जो, सर्व घाति नहिं होइ ।
तीन माहिं इह शुभ तहूं, वरजनीक है सोइ ॥९८॥
ए मिथ्यात जु तीन विधि, कहे सूत्र अनुसार ।
सुनों चौकरी बात अब, चारि चारि परकार ॥९९॥
क्रोध जु पाहन रेख सो, पाहन थंभ जु मान ।
माया बांस जु जड़ समा, अति परपंच बखान ॥१००॥
लोभ जु लाखा रंग सो, नर्क जोनि दातार ।
भरमावै जु अनंत भव, प्रथम चौकरी भार ॥१॥

हल रेखा सम क्रोध है, अस्थि थभ सम मान।
माया मीढ़ा सींगसी, तिथि षट् मास प्रमान ॥२॥
रङ्ग आलके सारखो, लोभ पशुगति दाय।
इह दूजो है चौकरी, अप्रत्याख्यान कहाय ॥३॥
रथ रेखा सम क्रोध है, काठथम्भ सो मान।
गोमूत्रकी जु वक्रता, ता सम माया जान ॥४॥
लोभ कसुमारंग सो, नर भवदायक होई।
दिन पंदरा लग वासना, तृतीय चौकरी सोई ॥५॥
जल रेखा सो रोस है, बेंतलता सो मान।
माया सुरभी चमरशो, लोभ पतंग समान ॥६॥
तथा हरिद्रारंग सो, सुरगति दायक जेह।
एक महूरत वासना, अन्त चौकरी लेह ॥७॥
कही चौकरी चारि ये, च्यारहि गतिकों मूल।
चारि चौकरी परि हरै, करै करम निरमूल ॥८॥
मुनिनें तीन जु परिहरी, धरी सांतता सार।
चौथी हूको नाश करि पावै, भवजल पार ॥९।
सकल कर्मकी प्रकृति सौ, अरि ऊपरि अड़ताल।
मुनिवर सर्व खपावहीं, जीवनिके रिछपाल ॥१०॥
मुनिपद बिन नहिं मोक्ष पद, यह निश्चै उरधारि।
मुनिराजनकी भक्ति करि, अपनों जन्म सुधारि ॥११॥

छन्द चाल

मुनि हैं निर्ग्रंथ वनवासी, एकान्तवास सुखरासी।
निज ध्यानी आतमरामा, जगको संगति नहीं कामा ॥१२॥
जे मुनि रहनेको थाना, वनमें कराहिं मतिवाना।
ते पावें शिव सुर थाना, यह सूत्र प्रमाण बखाना ॥१३॥
मुनि लेई अहारइ भिक्षा, लघु एक वार कर पात्रा।
जे मुनिकों भोजन देहीं, ते सुरपुर शिवपुर लेहीं ॥१४॥
जौ लग नहिं केवल भावा, तौ लग आहार धरावा।
केवल उपजें न अहारा, भागें भवदूषण सारा ॥१५॥
नहिं भूख तृपादि मत्रैं ही, जब केवल ज्ञान फबैंही।
केवल पायें जिनराजा, केवल पद ले मुनिराजा ॥१६॥
मुनिकी सेवा सुखकारी, बड़ भाग करें ऊरधारी।
पुस्तक मुनि पं जावें, मुनि सूत्र अर्थ ते आवें ॥ १७ ॥
ते पावें आतमज्ञाना, ज्ञानहि करि ह्वै निरवाना।
भेपज भोजनमें युक्ता, मुनिकों लखि राग प्रव्यक्ता ॥१८॥
देवें ते रोग नसावें, कमादिक फेरि न आवें।
मुनिके उपसर्ग निवारें, ते आतम भवदधि तारें ॥ १९ ॥
मुनिराज समान न दूजा, मुनिपद त्रिभुवन करि पूजा।
मुनिराज त्रिवर्णा होवे, शूदर नहिं मुनिपद जोवे ॥ २० ॥
मुनि आर्या एल महा ए ह्वै, क्षत्रा द्विज वणिजाए।
अब मध्यपात्रके भेदा, त्रिविधा सुनि पाप उछेदा ॥ २१ ॥

उतकिष्ट रु मध्य जघन्या, जिनसे नहि जगमें अन्या।
पहली पड़िमासों लेई, छट्ठो तक श्रावक जेई ॥ २२ ॥
मध्यनिमें जघन कहावे, गुरु धर्म देव उर लावै।
जे पञ्चम ठाणां माई, अणुव्रत्ती नाम धराई ॥ २३ ॥
पहली पड़िमा धर बुद्धा, सम्यक दरशन गुण शुद्धा।
त्यागें जे सातों विसना, छांड़ें विषयनकी तृष्णा ॥ २४ ॥
जे अष्टमूल गुण धारें, तजि अभख जीव न संघारें।
दूजी पडिमा धरि धीरा, व्रतधारक कहिये वीरा ॥ २५ ॥
बारा व्रत पालै जोई, सेवे जिनमारग सोई।
जे धारें पञ्च अणुव्रत्त, त्रय गुणव्रत चउ शिक्षाव्रत ॥२६॥

चौपाई।

तीजी पड़िमा धरि मतिवन्त, सामायकमें मुनिसे सन्त।
पोसामें आरूढ़ विशाल, सो चौथी पड़िमा प्रतिपाल ॥ २७ ॥
पञ्चम पड़िमा धर न धीर, त्याग सचित्त वस्तु वर वीर।
पत्र फूल कूंपल आदि, छालि मूल अंकुर वीजादि ॥ २८ ॥
मन वच तन करि नीली हरी, त्यागै उरमें दृढ़ व्रतधरी।
जीव दयाको रूप निदान, पट कायाको पीहर जान ॥ २९ ॥
पाल्यौ जैन वचन जिन धीर, सर्व जीवकी मेटी पीर।
छट्ठी प्रतिमा धारक सोई, दिवस नारिको परस न होई ॥ ३०॥
रात्रि विषें अनसन व्रत धरै चउ अहारकों है परिहरै।
गमनागमन तजै निशि माहिं, मनवचतन दिन शील धराहिं ॥

ए पहलीलों छट्ठी लगें, जघन्नि श्रावकके व्रत जगें।
पतिव्रता व्रतवंती नारि, मध्यम पात्र जघन्नि विचारि ॥ ३२ ॥
श्रावक और श्राविका जेह, घरवारी व्रतचारी तेह।
मध्यम पात्तर कहे जघन्य, इनकी सेव करे सो धन्य ॥ ३३ ॥
वस्त्राभरण अन्न जल आदि, थान मान औषध दानादि।
देवे श्रुत सिद्धान्त जु वीर, हरनी तिनकी सब ही पीर ॥ ३४ ॥
अभय दान देवो गुणवान, करनी भगति कहैं भगवान।
भवजलके द्रोहण ए पात्र, पार उतारें दरसन मात्र ॥ ३५ ॥

दोहा—सप्तम प्रतिमा धारका, ब्रह्मचर्य व्रत धार।
नारीकों नागिन गिनें, लख्यौ तत्त्व अविकार ॥३६॥
मन वच तन करि शीलधर, कृत कारित अनुमोद।
निजनारीहूकूं तजै, पावै परम प्रमोद ॥ ३७ ॥
जैसे ग्यारम दशम नव, अष्टम पडिमाधार।
मन वच तन करि शील धरि, तैसे ए अविकार ॥३८॥
तिनतें एतो आंतरो, ते आरम्भ वितीत।
इनके अलपारम्भ है, क्रोध लोभ छल जीत ॥ ३९ ॥
लख्यौ आपनों तत्त्व जिन, नहिं मायासों मोह।
तजै राग दोषादि सब, काम क्रोध पर द्रोह ॥ ४० ॥
कछु इक धनको लेस है, तातें घरमें वास।
जे इनकी सेवा करें, ते पावें सुखरास ॥ ४१ ॥

———*———

छन्द चाल।

अब सुनि अष्टम पड़िमा ए, त्रस थावर जीवदया ए।
कछु ही धंधा नहिं करनों, आरम्भ सर्व परिहरनों ॥ ४२ ॥
भजनों जिनकों जगदीसा, तजनों जगजाल गरीसा।
तनसों नहि स्वामित धरनों, हिंसासों अतिही डरनों ॥ ४३ ॥
श्रावकके भोजन करई, नवमी सम चेष्टा धरई।
नवमीतें एतो अन्तर, ए हैं कछुयक परिग्रह धर ॥ ४४ ॥
वन माहीं थोरा रहनो, शीतोष्ण जु थोरा सहनों।
जे नवमी पडिमावन्ता, जगके त्यागी विक्रमंता ॥ ४५ ॥
जिन धातु मात्र सब नाखें, कपडा कछुयक ही राखें।
श्रावकके भोजन भाई, नहिं माया मोह धराई ॥ ४६ ॥
आवैं जु बुलायें जोवा, जिनका नहिं माया छीवा।
है दशमीतें कछु नूना, परिक्रीय कर्म अघ चूना ॥४७॥
एतो ही अंतर उनतें, कबहुक लौकिक वचननतें।
बोलें परि विरक्तभावा, धनको नहिं लेश धरावा ॥४८॥
आतेकों आरुकारा, जातें सो हल मल धारा।
दसमीतें अतिहि उदासा, नहिं लौकिक वचन प्रकाशा ॥४९॥
सप्तम अष्टम अर नवमा, ए मध्य सरावग पड़िमा।
मध्यनिमें मध्य जु पात्रा, व्रत शील ज्ञान गुण गात्रा ॥५०॥
अथवा हो श्राविक शुद्धा, व्रतधारक शील प्रबुद्धा।
जो ब्रह्मचारिणी बाला, आजनम शील गुण माला ॥५१॥

सो मध्यम पात्रा मध्या, जानों व्रत शील अबध्या ।
अथवा निजपतिकों त्यागैं, मो ब्रह्मचर्य अनुरागैं ॥५२॥
सो परमश्राविका भाई, मध्यनिमें मध्य कहाई ।
इनको जो देय अहारा, सो ह्वै भवसागर पारा ॥५३॥

दोहा—अन्न वस्त्र जल औषधी, पुस्तक उपकरणादि ।
थान नान दान जु करैं, ते भव तिरैं अनादि ॥५४॥
हरैं सकल उपसर्ग जे, ते निरुपद्रव होंहि ।
सुरनर पति ह्वै मोक्षमें, राजें अति सुखमों हि ॥५५॥

छन्द चाल ।

जो दशमी पड़िमा धारा, श्रावक सु विवेकी चारा ।
जग धधाको नहिं लेसा, नहि धधाको उपदेशा ॥५६॥
वनमें हु रहै वर वीरा, ग्रामे हु रहै गुणधीरा ।
आवै श्रावक घरि जीवा, नहि कनकादिक कछु छींवा ॥५७॥
एकादशमीतें छोटे, परि और सकलतें मोटे ।
जिनवानी बिन नहिं बोलें, जे कितहूँ चित्त न डोलें ॥५८॥
मुनिवरके तुल्य महानर, दशमी एकादशमी धर ।
एकादशमी द्वै भेदा, एलिक छुल्लक अघछेदा ॥५९॥
इनसे नहिं श्रावक कोई, सबमें उतकिष्टे होई ।
त्यागौ जिन जगत असारा, लाग्यौ जिन रंग अपारा ॥६०॥
पायौ जिनराज सुधर्मा, छांड़े मिथ्यात अधर्मा ।
जिनके पंचम गुणठाणा, पूरणतारूप विधाना ॥६१॥

द्वै माहि महंत जु ऐला, निश्चलता करि सुरशैला।
जिनके परिग्रह कोपीना, अर कमंडल पीछी तीना ॥६२॥
जिनसासनको अभ्यासा, भवभावनिसू जु उदासा।
श्रावकके घर अविकारा, ले आप उदंड अहारा ॥६३॥
गुणवान साध सारीसा, लुञ्चितकेसा विनरीसा।
ए ऐलि त्रिवर्णा होई, शूद्रा नहिं ऐलि जु कोई ॥६४॥
इनतें छुल्लक कछु छोटे, परि और सकलतें मोटे।
इक खंडित कपरा राखें, तिनको छुल्लक जिन भाखें ॥६५॥
कमंडलु पीछी कोपीना, इन विन परिग्रह तजि दीना।
जिनश्रुति अभ्यास निरन्तर, जान्यू है निज पर अंतर ॥६६॥
जे हैं जु उदंड विहारा, ले भाजनमाहि अहारा।
कातरिका केस करावैं, ते छुल्लक नाम कहावै ॥६७॥
चारों हैं वर्ण जु छुल्लक, राखें नहिं जगमूं तहलुक।
आनन्दो आतमरामा, सम्यकदृष्टी अभिरामा ॥ ६८ ॥
ए द्वै हैं भेद बड़ भाई, ग्यारम पड़िमा जु कहाई।
वन माहिं रहैं वर वीरा, निरभै निरव्याकुल धीरा ॥६९॥
तिनकी करि सेव जु भाया, जो जीवनिकों सुखदाया।
तिनकी रहनेकों थाना, वनमें करने मतिवाना ॥ ७० ॥
भोजन भेषज जिनग्रन्था, इनकों दे सो निजपंथा।
पावै अर दे उपकरणा, सो हरै जनम जर मरणा ॥७१॥
उपसर्ग उपद्रव टारै, ते निरभै थान निहारैं।
दसमी अर ग्यारम दोऊ, मध्यम उतकिष्टे होउ ॥७२॥

अथवा आर्या व्रतधारी, अणुव्रतमें श्रेष्ट अपारी ।
आर्या घरबार जु त्यागै, श्रीजिनवरके मत लागै ॥७३॥
राखै इक वस्त्र हि मात्रा, तप करि है क्षीण जु गात्रा ।
कमंडल पीछी अर पोथी,—लै भूत तजी सहु थोथी ॥७४॥
थावर जंगम तनवाना, जानैं सब आप समाना ।
जे मुनि करि पात्र अहारा, सिर लौंच करैं तप धारा ॥७५॥
तिनकी सी रीति जु धारैं जगसों ममता नहिं कारैं ।
द्विज क्षत्री वणिक कुला ही, ह्वै आर्या अति विमलाही ॥७६॥
अणुव्रत परि महाव्रत तुल्या, नारिनमें एहि अतुल्या ।
माता त्रिभुवनकी भाई, परमेसुरसों लवलाई ॥७७॥
आर्याकों वस्त्र जु भोजन, देनें भक्ती करि भोजन ।
पुस्तक औषधि उपकरणा, देनें सहु पाप जु हरणा ॥७८॥
उपसर्ग हरै बुधिवाना, रहनेकों उत्तम थाना ।
देवे पुन वह अविनासी, लेवै अति आनंदरासी ॥७९॥
दोहा—छै पड़िमा जानों जघनि, मध्य जु नवमी ताई ।
कस एकादशमी उभै, उतकृष्टी कहवाई ॥८०॥
पतिव्रता जो श्राविका, मध्यम माहि जघन्य ।
ब्रह्मचारिणी मध्य है, आर्या उत्तम धन्य ॥८१॥
पंचम गुण ठाणों व्रती, श्रावक मध्य जु पात्र ।
छठें सातवें ठाण मुनि, महामात्रगुणगात्र ॥८२॥
कहे मध्यके भेद त्रय, अर उतकिष्ट तीन ।
सुनों जघन्य जू पात्रके, तीन भेद गुणलीन ॥८३॥

चौथे गुणठाणे महा, क्षायक सम्यकवन्त।
सो उतकिष्टे जघनिमें, भाषें श्रीभगवन्त ॥८४॥
क्रोध मान छल लोभ खल, प्रथम चौकरी जानि।
मिथ्या अर मिश्रहि तथा, समै प्रकृति परवानि ॥८५॥
सात प्रकृति ए खय गई, रह्यौ अलप संसार।
जीवनमुक्त दशा धरै, सो क्षायकसम धार ॥८६॥
सातो जाके उपसमें, रमे आपमें धीर।
सो उपसम-सम्यक धनी, जघनि मांहि मधिवीर ॥८७॥
सात मांहि षट उपसमें, एक तृतीय मिथ्यात।
उदै होइ है जा समें, सो वेदक विख्यात ॥८८॥
वेदक सम्यकवन्त जो जघनि जघनिमें जानि।
कहे तीन विधि जवनि ए, निज आज्ञा उर आनि ॥८९॥
जघनि पात्रकूं अन्न जल, औषध पुस्तक आदि।
वस्त्राभूषण आदि शुभ, थान मान दानादि ॥९०॥
देवो गुरु भाषें भया, करनो बहु उपगार।
हरनी पीरा कष्ट सहु, धरनों नेह अपार ॥९१॥
सब ही सम्यक धारका, सदा शांत रसलीन।
निकट भव्य जिनधर्मके—धोरी परम प्रवीन ॥९२॥
नव भेदा सम्यक्तके, तामें उत्तम एक।
सात भेद गनि मध्यके, जवनि एक सुविवेक ॥९३॥
वेदक एक जघन्य है, उत्तम क्षायक एक।
और सबै गनि मध्य ए, इह धारौ जु विवेक ॥९४॥

क्षयोपसम वरतै त्रिविध, वेदक चारि प्रकार ।
क्षायक उपसम जुगल जुत, नौधा समकित धार ॥९५॥
वेदक कछुयक चंचला, तौपनि मर्म उछेद ।
लखै आपकी शुद्धता, जानैं निज पर भेद ॥९६॥
सेवा जोग्य सुपात्र ए, कहे जिनागम माहिं ।
भक्ति सहित जे दान दें, ते भवभ्रांति नसाहिं ॥९७॥
त्रिविध पात्रके भेद नव, कहे सूत्र परवान ।
मुनिको नवधा भक्ति करि, देहि दान बुधिमान ॥९८॥
विधिपूर्वक शुभ वस्तुकों, स्वपर अनुग्रह हेत ।
पातरकों दान जु करै, सो शिवपुरको लेत ॥९९॥
नवधा भक्ति जु कोनसी, सो सुनि सूत्र प्रवानि ।
मिथ्या मारग छाड़ि करि, निज श्रद्धा उर आनि ॥१००॥
आवौ आवौ शबद कहि, तिष्ट तिष्ट भासेहि ।
सो संग्रह जानों बुधा, अघ-संग्रह टारेहि ॥ १ ॥
ऊंचौ आसन देय शुभ, पात्रनिकों परवीन ।
पग धोवै अरचै बहुरि, होय बहुत आधीन ॥ २ ॥
करै प्रणाम विनै करी, त्रिकरण शुद्धि धरेहि ।
खानपानकी शुद्धता, ये नव भक्ति करेहि ॥ ३ ॥
सुनों सात गुण पंडिता, दातारनिके जेह ।
धारै धरमी धीर नर, उधरै भवजल तेह ॥ ४ ॥
इह भव फल चाहै नहीं, क्रियावान अति होय ।
कपट रहित ईर्षा रहित, धरै विषाद न सोय ॥५॥

हुई उदारता गुण सहित, अहंकार नहिं जानि ।
ए दाताके सप्त गुण, कहे सूत्र परवानि ॥ ६ ॥
श्रद्धा धरि निज शक्तिजुत, लोभ रहित ह्वै धीर ।
दया क्षमा दृढ़ चित्त करि, देय अन्न अर नीर ॥७॥
रागदोष मद भोग भय, निद्रा मन्मथपीर ।
उपजावै जु असंजमा, सो देवौ नहिं वीर ॥८॥
यह आज्ञा जिनराजकी, तप स्वाध्याय सु ध्यान ।
वृद्धिकरण देवौ सदा, जाकरि लहिये ज्ञान ॥९॥
मोक्ष कारणा जे गुणा, पात्र गुणनके धीर ।
तातें पात्र पुनीत ए, भापें श्रीजिनवीर ॥१०॥
संविभाग अतिथीनको, व्रत बारमों सोइ ।
दया तनों कारण इहै, हिंसा नाशक होइ ॥११॥
हिंसाके कारण महा लोभ अजसकी खानि ।
दान करै नासै भया, इह निश्चै उर आनि ॥१२॥
भोग रहित निज जोग धरि, परमेसुरके लोग ।
जिनके दर्शन मात्र ही, मिटै सकल दुख सोग ॥१३॥
मधुकर वृति धारैं मुनी, पर पीड़ा न करेय ।
पुन्यजोग आवै घरैं, जिन आज्ञा जु धरेय ॥१४॥
तिनकों जो सु अहार दे, ता सम और न कोई ।
दान धर्मतें रहित जे, किरपण कहिये सोइ ॥१५॥
कियौ आपने अर्थ जो, सो ही भोजन भ्रात ।
मुनिकों अरति विषाद तजि, सो भवपार लहात ॥१६॥

शिथिल कियो जिंह लोभकौं, परम पंथके हेत।
तेई पात्रनिकौं सदा, विधि करि दान जु देत ॥१७॥
सम्यकदृष्टी दान करि, पावै पुर निरवान।
अथवा भव धरनौ परै, तौ पावै सुरथान ॥१८॥
विन सम्यक्त जु दान दे, त्रिविध पात्रको जोहि।
पावै इन्द्रीं भोग सुख, भोगभूमिमें सोहि ॥१९॥
उत्तम पात्र सु दानतैं, भोगभूमि उतकिष्ट।
पावै दशधा कल्पतरु, जहां न एक अनिष्ट ॥२०॥
मध्य पात्रके दान करि, मध्य भोग भू माहिं।
जघनि पात्रके दान करि, जघनि भोगभू जाहिं ॥२१॥
पात्रदानको फल इहै, भाषैं गणधरदेव।
धन्य धन्य जे जगतमें, करैं पात्रकी सेव ॥२२॥

छन्द चाल

देने औषध सु अहारा, देने श्रुत पाप प्रहारा।
रहनेको देनी ठौरा, करने अति ही जु निहौरा ॥२३॥
हरने उपसर्ग तिनूंके, धरनें गुण चित्त जिनूंके।
सुख साता देनी भाई, सेवा करनी मन लाई ॥२४॥
ए नवविधि पात्र जु भाखे, आगम अध्यातम साखे।
बहुरि त्रय भेद कुपात्रा, धारैं बाहिज व्रतमात्रा ॥२५॥
जे शुभ किरिया करि युक्ता, जिनके नहि रीति अयुक्ता।
सम्यक्दर्शन विन साधू, तप संयम शील अराधू ॥२६॥

पावे नहिं भवजल पारा, जावें सुरलोक विचारा।
पहुंचे नव ग्रीव लगै भी, जिनतैं अघकर्म भगै भी ॥२७॥
पण भावलिंग विनु भाई, मिथ्यादृष्टी ही कहाई।
द्रविलिंगि धार जति जई, उतकिष्ट कुपात्रा तेई ॥२८॥
जे सम्यक विन अणुव्रत्ती, द्रवि श्रावकव्रत प्रवृत्ती।
ते मध्य कुपात्र बखानें, गुरुने नहि श्रावक मानें ॥२९॥
आपा पर परच नाहीं, गनिये बहिरातम माहीं।
षोड़स सुरगोंलों जावें, आतम अनुभव नहिं पावें ॥३०॥

दोहा—जघनि कुपात्रा अव्रती, वाहिर धर्मप्रतीति।
दीखें समदृष्टि समा, नहीं सम्यकको रीति ॥३१॥
शुभगति पावौ तौ कहा, लहै न केवल भाव।
ये संसारी जानिये, भाषैं श्रीजिन राव ॥३२॥
इनको जानि सुपात्र जो धारें भक्ति विधान।
सो कुभोग भूमी लहै, अल्पभोग परवान ॥३३॥
पर उपगार दया निमित्त, सदा सकलको देय।
पात्रनिकी सेवा करै, सो शिवपुर सुख लेय ॥३४॥
नहि श्रावक नहिं व्रत जती, नहिं श्रावक व्रत जानि।
नहिं प्रतीति जिन धर्मकी, ते अपात्र परवानि ॥३५॥
तिनै न करनों तिन तनों, दया सकल परिजोग।
करनी भक्ति सु पात्रको, भक्ति अपार अजोग ॥३६॥
करनी करुणा सकल परि, हरनी सबकी पीर।
करनी सेवा सन्तकी, इह भाषैं श्री वीर ॥३७॥

पात्रापात्र द्विभेद ए, कहे सूत्र अनुसार ।
अब सुनि करुणादानको, भेद विविध परकार ॥३८॥
सब आतमा आपसे, चेतनगुण भरपूर ।
निज परको पहिचान बिन, भ्रमे जगत में क्रूर ॥३९॥
उदै कर्मके हैं दुखी, आदि व्याधिके रूप ।
परे पिण्डमें मूढ़धी, लखैं नहीं चिद्रूप ॥४०॥
तिन सब पर धरिके दया, करैं सदा उपगार ।
नर तिर सबही जीवको, हरै कष्ट व्रतधार ॥४१॥
अपनो शक्ति प्रमाण जो, मेटे परकी पीर ।
तन मन धन करि सबको, साता दे वर वीर ॥४२॥
अन्न वस्त्र जल औषधी, त्रण आदिक जे देय ।
जाने अपने मित्र सहु, करुणा भाव धरेय ॥४३॥
बाल बृद्ध रोगीनको, अति ही जतन कराय ।
अंध पंगु कुष्टि न परि, करै दया अधिकाय ॥४४॥
बन्दि छुड़ावै द्रव्य दे, जोव बचावै सर्व ।
अभैदानदे सर्वको, धरै न धनको गर्व ॥४५॥
काल दुकाले मांहि जो, अन्नदान बहु देय ।
रंकनिका पोहर जिकौ, नर भवको फल लेय ॥४६॥
जाको जगमे कोउ नहीं, ताको भीरी साइ ।
दुरबलको बल शुभ मती, प्रभुको दास कहाइ ॥४७॥
शीतकालमें शीत हर, दे वस्त्रादिक वीर ।
उष्णकालमें तापहर, वस्तु प्रदायक धीर ॥४८॥

वर्षा कालै धर्म धी, दे आश्रय सुखदाय।
जल बाधा हर वस्तु दे, कोमल भाव धराय ॥४६॥
भांति भांतिके औषधो, भांति भांतिके चीर।
भांति भांतिकी वस्तु दे, सो जैनी जगवीर ॥५०॥
दान विधी जु अनन्त है, को लग करे बखान।
जाने श्रीजिनराज जु, किह दाता बुधिवान ॥५१॥
भक्ति दया द्वै विधी कही, दान धर्मकी रीति।
ते नर अङ्गीकृत करें, जिनके जैन प्रतीति ॥५२॥
लक्ष्मी दासी दानकी, दान मुकतिको मूल।
दान समान न आन कोउ, जिंन मारग अनुकूल ॥५३॥
अतीचार या व्रतके, तजै पच परकार।
तब पावें व्रत शुद्धता, लहै धर्म अवतार ॥५४॥
भोजनको मुनि आवहीं, तब जो मूढ़ कदापि।
मनमें ऐसी चिंतवै, दान-करन्ता क्वापि ॥५५॥
लगि है वेला चूकिहों, जगतकाज तें आज।
तातें काहूको कहै, जांय करें जग काज ॥५६॥
मो बिन काम न होइगो, तातें जानों मोहि।
दान करेंगे भात-सुत, इहहू कारिज होहि ॥५७॥
धनको जाने सार जो, धर्म हि जाने रञ्च।
सो मूढनि सिरमौर है, घटमें बहुत प्रपंच ॥५८॥
कहै भ्राति पुत्रादिको, दानतनों शुभ काम।
आप सिधारे जड मती, जग धंधाके ठाम ॥५६॥

परदात्री उपदेश यह, दूषण पहलो जानि ।
पराधीन ह्वै या थकी, यह निश्चय उर आनि ॥६०॥
मुनि सम ह्वै गो धन कहा, इह धारै उर धीर ।
भुक्तिमुक्ति दाता मुनी, षट कायनिके वीर ॥६१॥
फुनि सचित्त निक्षेप है, दूजौ दोष अजोगि ।
ताहि तजें तेई भया, दान व्रतको जोगि ॥६२॥
सचित वस्तु कदली दला, ढाक पत्र इत्यादि ।
तिनमें मेली वस्तु जो, मुनिको देवौ वादि ॥६३॥
दोष लगै जु सचित्तको, मुनिके अचित आहार ।
तातैं सचित निक्षेपको, त्याग करै व्रत धार ॥६४॥
तीजौ सचित विधान है, ताहि तजौ गुणवान ।
कमलपत्र आदिक सचित, तिन करि ढांक्यौ धान ॥६५॥
नहिं देनों मुनिरायको, लगै सचितको दोष ।
प्रासुक आहारी मुनी, व्रत तप संजम कोष ॥६६॥
काल उलंघन दानको योग्य होत नहि दान ।
सो चौथो दूषण भया, त्यागै ते मतिवान ॥६७॥
है मच्छरता पंचमो, दूषण दुखकी खानि ।
करै अनादर दानको, ता सम मूढ़ न आनि ॥६८॥
देखि न सकै विभूति पर, परगुण देखि सकै न ।
सहि न सकै पर उच्चता, सो भवत्रास तजै न ॥६९॥
नहि मात्सर्य समान कोउ, दूषण जगमें आन ।
जाहि निषेधैं सूत्रमें तीर्थंकर भगवान ॥७०॥

अतीचार ए दानके कहे, जु श्रुत अनुसार ।
इनके त्याग किये शुभा, होवै व्रत अविकार ॥७१॥
नमों नमों चउदानकों, जे द्वादश व्रत मूल ।
भोजन भेषज भै हरण ज्ञानदान हर भूल ॥७२॥
भोजन दानें ऋद्धि ह्वै औषध रोग निवार ।
अभेदानतें निर्भया, श्रुति दानें श्रुति पार ॥७३॥
कहे वृत द्वादश सबै, दया आदि सुखदाय ।
दान अजंत शुभंकरा, जिन करि सब दुख जाय ॥७४॥
एक एक व्रतके कहे, पंच पंच अतिचार ।
पालें निरतीचार व्रत, ते पावैं भव पार ॥७५॥
सम्यंक बिन नहिं व्रत्त ह्वै व्रत बिन नहिं वैराग ।
विन वैराग न ज्ञान ह्वै, राग तजें बड़भाग ॥७६॥

छन्द चाल

अब सुनि सब व्रतको कोटा, देशावकाशिव्रत मोटा ।
ताको सुनि रीति जु भाई, जैसो जिनराज बताई ॥७७॥
पहले जु करौ परमाणा, दिसि विदिशाको विधि जाणा ।
इन्द्री विषयनको नेमा, कीयौ धरि व्रतसों प्रेमा ॥७८॥
धन धान्य अन्न वस्त्रादी, भोजन पानाभरणादी ।
मरजादा सबकी धारी, जीवितलों धर्म सम्हारी ॥७९॥
जामें मरजादा वरसी, तामें छै मासी दरसी ।
करनी चउमासी तामें वहुरि द्वै मासी जामें ॥८०॥

ताहूमें मासी नेमा, मासीमें पाखी प्रेमा।
पाखीमें आधी पाखी, जाहूमें दिन दिन भाखी ॥८१॥
दिन माहीं पहरां धारै, पहरनिमें घरी विचारै।
पल पलके धारै नेमा, जाके जिनमतसों प्रेमा ॥८२॥
भोगनिसों घटतो जाई, व्रत है चढ़तो अधिकाई।
सीमामें सीमा कारै, जिन मारग जनतै धारै ॥ ८३ ॥
ह्वै वाड़ि फले क्षेत्रनिके, जैसे कोट जु नगरीके।
तैसे यह द्वादश व्रतके, देशावकाशि व्रत सबके ॥८४॥
देसावकाशि व्रत माहीं, सतरा नेम जु सक नाहीं।
तिनकी सुनि रीति जु मित्रा, जिन करि ह्वै व्रत पवित्रा।८५।

दोहा—नियम किये व्रत शोभा ही, नियम बिना नंहि शोभ।
तातैं व्रत धरि नेमकों, धारै तजि मद लोभ ॥८६॥

सातरा नेमके नाम उक्तश्च श्रावकाचारे—
भोजने पटरसेपाने, कुंकुमादिविलेपने।
पुष्पतांबूलगीतेषु, नृत्यादौ ब्रह्मचर्यके ॥ १ ॥
स्नानभूषणवस्त्रादौ, वाहने शयनाशने।
सचित्तवस्तुसंख्यादौ, प्रमाणं भज प्रत्यहम् ॥२॥

चौपाई।

भोजनकी मरजादा गहै, वारंवार न भोजन लहै।
पर घर भोजन तोहि जु करै, प्रात समै जो संख्या धरै ॥८७॥
अन्न मिठाई मेवा आदि, भोजन माहिं गिने जु अनादि।
बहुरि चवेणीं अर पकवान, भोजन जाति कहे भगवान ॥८८॥

सब मरजादा माफिक गहै, बारबार ना लीयौ चहै।
षट रसमें राखे जो रसा, सोई लेय नेममें बसा ॥८९॥
और ना रस चाखौ बुधिवन्त, इह आज्ञा भाषैं भगवन्त।
कामउदीपक हैं रसजाति, रस परित्याग महातप भांति ॥९०॥
जो रसजाति तजी नहिं जाय, करि प्रमाण जियमें ठहराय।
पानी सरबत दूधरु मही, इत्यादिक पीवेके सही ॥९१॥
तिनमें लेवौ राखै जोहि, ता माफिक लेवौ बुध सोहि।
चोवा चन्दन तेल फुलेल, कुंकुम और अरगजा मेल ॥९२॥
औषधि आदि लेप हैं जेह, संख्या विन न लगावै तेह।
जाने येह देह दुरगन्ध वाके कहा लगावै सुगन्ध ॥ ९३ ॥
जो न सर्वथा त्यागै वीर, तोहु प्रमाण गृहै नर धीर।
बहुप जाति सों छाड़ैं प्रेम, अति दोषीक कहे गुरु एम ॥९४॥
भोग उदै जो त्यागि न सकै, थोरे लेप पाप तें सकै।
पान सुपारी डोढ़ा आदि, लौंगादिक मुखसोध अनादि ॥९५॥
दालचिनी जाविश्री जानि, जातीफल इत्यादि बखानि।
सबमें पान महादोषीक, जैसे पापनि माहिं अलीक ॥९६॥
पान त्यागिवौ जाणो जीव, पापनिमें प्राणी जु अतीव।
जो अतिभोगी छांड़ि न सकै, थोरे खाय दोषतैं सकै ॥९७॥
गीत नृत्य वादित्र जु सर्व, उपजावे अति मनमथ गर्व।
ए कौतूहल अधिके बन्ध, इनमें जो राचै सो अन्ध ॥९८॥
जो न सर्वथा छोड़े जाय, तोहु अधिक न राग धराय।
मरजादा माफिक ही भजै, औसर पाय सकल ही तजै ॥९९॥

एक सेद या माहों और, आपुन बैठो अपनी ठौर।
गावत गीत त्रिया नीकली, सुनिकर हरषै चितधरि रली ।।१००।।
तामें दोष लगै अधिकाय, भाव सराग महा दुखदाय।
पातरि नृत्य अखारे माहिं, नट नटवा अथ नृत्य कराहि ।।१।।
वादीगर आदिक बहु ख्याल, बिनु परमाण न देखौ लाल।
अब मुनि ब्रह्मचर्यकी बात, याहि जु पाले तेहि उदात ।।२।।
परनारीको है परिहार, निज नारीमें इह निरधार।
जावो जीव दिवसको त्याग, रात्रि विषै हू अलपहि राग ।।३।।
पांचूं परवी सील गहेय, अर सब वृतके दिवस धरेय।
कबहुक मैथुन सेवन परै, सो मरजादा माफिक करै ।।४।।
महा दोषको मूल कुशील, या तजिवेमें ना करि ढील।
सेवत मनमथ जीव विघात, इहै काम है अति उतपात ।।५।।
जो न सर्वथा त्याग्यौ जाहि, तौहू अलप सेववौ ताहि।
नदी तलाव वापिका कूप, तहां जात न्हावौ जु विरूप ।।६।।
जो न्हावै बिनछाणों जले, ते सब धर्म कर्मतैं टलैं।
जैसो रुधि रथकी ह्वै स्नान, तैसो अनगाले जलजान ।।७।।
अचित्त जले न्हावैं है भया, प्रासुक निर्मल विधिकरि लया।
ताहूकी मरजादा धरै, बिना नेम कारिज नहिं करै ।।८।।
रात्री न्हावै नाहिं कदापि, जीव न सूझे मिश्र कदापि।
हिंसा सम नहिं पाप जु और दया सकल धर्मनिकर मौर ।।९।।
आभूषण पहिरे हैं जिते, घरमें और धरै हैं तिते।
नियम बिना नहिं भूषणधरै, सकल वस्तुको नियमजु करै ।।१०।।

परके दीये पहरें जहि, नियम माहिं राखै हैं तेहि ।
रतनत्रय भूषण विनु आन, पाहन सम जाने मतिवान ॥११॥
वस्त्रनिकी जेती मरजाद, ता माफिक पहरें अविवाद ।
अथवा नये ऊजरे और, नियम रूप पहरें सुभतौर ॥१२॥
सुसरादिकके दीने भया, अथवा मित्रादिकते लया ।
राजादिकने की बकसीस, अदभुत अंबर मोल गरीस ॥१३॥
नित्यनेममें राखै होइ, तौ पहिरै नहितरि नहिं कोइ ।
पांवनिकी पनही हैं जेहि, तेऊ वस्त्रनि माहिं गिनेहि ॥१४॥
नई पुरानी निज परतणी, राखै सो पहिरै इम भणी ।
पनही तजै पहरचौ भया, तौ उपजै प्राणिनिकी दया ॥१५॥
रथवाहन सुखपाल इत्यादि, हस्ती ऊंटरु घोटक आदि ।
एहैं थलके वाहन सवें, फुनि विमान आदिक नभ फवें ॥१६॥
नाव जिहाज आदि जलकेह, इनमें ममता नाहिं धरेह ।
कोइक जावो जीवै तजै, कोइक राखै नियमा भजै ॥ १७ ॥
तिनहूंमें निति नेम करेइ, बहु अभिलाषा छांड़ि जु देइ ।
मुनि ह्वौ चाहे मन मांहि, जगमाहीं जाको चित नाहिं ॥१८॥
वाहन चढ़ै होइ नहिं दया, तातैं तजै धन्य ते भया ।
मुनि आर्या अर श्रावक बड़े, हैं जु निरारंभी अति छड़े ॥१९॥
ते वाहनको नाम मे धरै, जीवदया मारग अनुसरैं ।
आरम्भी श्रावक राजादि, तिनके वाहन है जु अनादि ॥२०॥
तेऊ करै प्रमाण सुवीर, नित्यनेम धरैं जगधीर ।
तीर्थंकर चक्री अरु काम, फुनि ह्वै फिरैं पयादे राम ॥२१॥

तातैं पगां चालिवौ भला, परसिर चलिवौ है अघमिला।
इहै भावना भावत रहै, सोवेगो शिवकारण लहै॥ २२॥
रतनत्रय शिवकारण कहे, दरसन ज्ञान चरण जिन लहे।
अब सुनि शयनाशनकौ नेम, धारै श्रावक व्रतसों प्रेम ॥२३॥
जोहि पलंगपरि सोवौ वनों, सोहू शयन परिग्रह गनों।
सौड़ दुलाई तकिया आदि, सब सज्जा माहि अनादि ॥२४॥
इनको नेम धरै व्रतवान, भूमि शयन चाहै मतिवान।
भूमि शयन जोगीश्वर करै, उत्तम श्रावक हू अनुसरै ॥२५॥
आरंभी गृहपतिके सेज, तेहू नियम सहित अधिकेज।
जापरि परनारी सोवेहि, सो सज्जा बुध नहि जोवेहि ॥२६॥
निज सज्जा राखी है भया, ताहुमें परमित अति लया।
व्रतके दिन भू सज्जा करै, भोग भावतैं प्रेम न धरै ॥२७॥
गादो गाऊ तकिया आदि, चौका चोका पाट इत्यादि।
सिंहासन प्रमुखा जेतेक, आसन माहि गिनौ जु अनेक ॥२८॥
गिलम गलीचा सतरंजादि, जाजम चादर आदि अनादि।
इन चीजोंसे मोह निवार, जासें होय पार संचार॥ २९॥
जेती जाति बिछौना कीहि, सो सब आसन माहि गनीहि।
निज घरके अथवा परठाम, जेते मुकते राखे धाम॥ ३०॥
तिनपरि वैसे और जु त्याग, है जाको व्रतसूं अनुराग।
सचित वस्तुको भोजन निंद, जाहि निषेधे त्रिभुवनचंद ॥३१॥
मुनि आर्या त्यागेंहि सचित्त, उत्तम श्रावक लेहि अचित्त।
पंचम पड़िमा आदि सुधीर, एकादस पड़िमा लौं वीर ॥३२॥

कबहु न लेइ सचित्त आहार, गहै सचित्त वस्तु अविकार ।
पहली पड़िमा आदि चतुर्थ, पड़िमा लौं ले अचितहि अर्थ ॥३३॥
पै मनमें कम्पै सु विवेक, तजै सचित्त जु वस्तु अनेक ।
केइक राखी तामें नेम, नितप्रति धारै व्रतसों प्रेम ॥३४॥
कहा कहावै वस्तु सचित्त, सो धारौ भाई निज चित्त ।
पत्र फूल फल छांड़ि इत्यादि, कूंपल मूल कंद बीजादि ॥३५॥
पृथ्वी पाणी अग्नि जु वायु, एसहु सचित्त कहे जिनराय ।
जी सहित जो पुद्‌गल पिंड, सों सब सचित तजै गुणपिंड ।३६।
ये सहु जाति सचित्त तजेय, सो निहचै जिनराज भजेय ।
जो न सर्वथा त्यागी जाय, तौ कैयक लें नेम धराय ॥ ३७ ॥
संख्या सचित वस्तुकी करै, सकल वस्तुका नियम जु धरै ।
गिनती करि राखै सब वस्तु तबहि जानिये व्रत प्रशस्त ॥३८॥
लाडू पेड़ा पाक इत्यादि, औषधि रस अर चूरण आदि ।
बहुत वस्तु करि ज निप जेह, एक द्रव्य जानौं बुध तेह ॥३९॥
वस्तु गरिष्ट न खावे जोग, ए सब काम तने उपयोग ।
जो कदापि ये खाले परै, अलपथकौ अलप जु आहरै ॥४०॥
सत्रह नेम चितारै नित्य, जानौं ए सहु ठाठ अनित्य ।
प्रातथकी संध्यालौं करै, फुनि संध्या समये बुध धरै ॥४१॥
एती वस्तु तौ त्यागे धीर, राति परै नहिं सेवै वीर ।
भोजन षटरस पान समस्त, चदनलेप आदि परसस्त ॥४२॥
तजे राति तंबोल सुवीर, दया धर्म उर धारै धीर ।
गीत श्रवण जो होय कदापि, राखै नेम माहिं सो कापि ॥४३॥

नृत्यहुसों नहिं जाको भाव, पैन सर्वथा छांड्यौ चाव।
जौ लग गृहपति कवहुक लखै, सोहु नेममाहि जो रखै ॥४४॥
ब्रह्मचर्यसों जाको हेत, परनारीसों वार सचेत।
निज नारीहीमें संतोष, दिनकौ कवहु न मनमथ पोष ॥४५॥
रात्रिहुमें पहले पहरौ न, चोथी पहरौ मनमथको न।
दूजी तीजी पहर कदापि, पर सेवनो मैथुन कापि ॥४६॥
सोहू अलपथकी अति अल्प, नित प्रति नहिं याको संकल्प।
राखौ नेम माहिं सहु बात, विना नेम नहिं पांव धरात ॥४७॥
स्नान रातिकों कवहु न करै, दिनको स्नान तनी विधि धरै।
भूषण वस्त्रादिकको नेम, राखौ जाबिधि धारै प्रेम ॥४८॥
वाहन शयनाशनकी रीत, नेम माहिं धारै सहु नीति।
वस्तु सचित नहि निसिकों भखै, रजनीमें जलमात्र न चखै ।४९।
खान पानकी वस्तु समस्त, रात्रि विषै कोई न प्रशस्त।
या विधि सतरा नेम जु धरै, सो व्रत धारि परम गति वरै ।५०।
नियम विना धृग धृग नर जन्म, नियमवान होवहिं आजन्म।
यम नियमासन प्रणायम प्रत्याहार धारणा राम ॥५१॥
ध्यान समाधि अष्ट ए अंग योगतने भाषै जु असंग।
सबमें श्रेष्ट कही सुसमाधि, नियमथकी उपजै निरुपाधि ॥५२॥
राग दोषकौ त्याग समाधि, जाकरि टरै आधि अरु व्याधि।
परम शांतता उपजै जहां, लहिए आतम भाव जु तहां ॥५३॥
मरण काल उपजै जु समाधि, आय प्राप्त ह्वै अधिक व्याधि।
नित्य अभ्यासी होय समाधि, तौ न नीपजै एक उपाधि ॥५४॥

जो समाधितें छोड़े प्राण, तौ सद्गति पावैंहि सुजांण।
नाहिं समाधि समान जु और, है समाधि व्रत्तनि सिरमौर ।५५।

छन्द चाल

अब सुनि सल्लेषण भाई, जाकरि सहु वृत सुधराई।
उत्तम जन याकौं भावें, याकरि भवभ्रांति नसाव ॥५६॥
जे द्वादश वृत संयुक्ता, सल्लेखण कारई युक्ता।
होवें जु महा उपशांता, पावें सुरसौख्य सुकांता ॥५७॥
अनुक्रम पहुंचें थिर थानै, परकी सहु परणति भानै।
यह एकहु निर्मलव्रत्ता, समदृष्टी जो दृढ़चित्ता ॥५८॥
करई सो सुरपति होवै, फुनि नरपति ह्वै शिव जावै।
इह भुक्ति मुक्ति दायक है, सब व्रत्तनिको नायक है ।५९।

सोरठा—मेरो जो निजधर्म, ज्ञान सुदर्शन आचरण।
सो नाशक वसु कर्म, भासक अमित सुभावको ॥६०॥
मैं भूल्यौ निज धर्म, भयौ अधर्मा जगविषें।
तातें बाधे कर्म, कीये कुमरण अनन्त मैं ॥६१॥
मरि मरि चहूँगति मांहि, जनम्यौ मैं शठ भ्रांति धर।
सो पद पायौ नाहि, जहां जन्म मरण न ह्वै ॥६२॥
बिना समाधि जु मर्ण, मर्ण मिटै नहिं हमतनों।
यह एकैव जु सर्ण है, सल्लेषण अति गुणी ॥६३॥
निज परणतिसों मोहि, एकत करिवे सक इहै।
देख्यौ श्रुतिमें टाहि, ठौर ठौर याको जसा ॥६४॥

धरै निरन्तर याहि, अन्तिम सल्लेखण व्रत ।
उपजै उत्तम ताहि, मरणकाल निहसंकता ॥६५॥
करिहों पण्डित मर्ण, किये बाल मर्ण अमित ।
ले जिनवरको सर्ण, तजिहों काया कारिमा ॥६६॥
जिन आज्ञा अनुसार, अवश्य करौंगो अन्नसन ।
सल्लेखन व्रत धार, इहै भावना निति धरै ॥६७॥

वेसरी छन्द ।

मरणकाल धरियेगो भाई, परियाकों नित प्रति चितराई ।
व्रत अनागत या विधि पालै, या व्रत करि सहु दूषण टालैं ।६८।
मरणो नाहीं आतमतामें, तातैं निरभै होय रह्या मैं ।
पर सम्बन्ध अपनो काया, ताका नाता अवश्य नताया ॥६९॥
इनका ज्ञान हुए यह जीव, पावे निश्चय सुगति सदीव ।
मैं अनादि सिद्धों अविनाशी, सिद्ध समानां अति सुखरासी ।७०।
सो अनादि कालजुतैं भूल्यो, परपरणतिके रसमें फूल्यौ ।
पर परणति करि भयौ सदाषी, कर्म कलंक उपार्जक रोषी ।७१।
जातैं देह अनन्ती धारो, किये कुमर्ण अनन्ता भारो ।
मैं नहिं कबहूँ उपज्यो मूवौ, मैं चेतन माया तें दूवौ ॥७२॥
मोतैं भिन्न सकल परभावा, मै चिद्रूप अनन्त प्रभावा ।
कयो कषाय कलकित चित्ता, मै पापी अति ही अपवित्ता ।७३।
बहु तन धरि धरि डारै भाई, तन तजिवौ इह मरण कहाई ।
तातैं कुमरण मूल कषाया, क्षीण करै ध्याऊं जिनराया ॥७४॥

रागादिक तजि करौं सुमरणा, बहुरि न मेरे होइ कुमरणा।
इहै धारना धरि व्रत धारो, दुर्बल करै कषाय जु सारी ॥७५॥
कै गुरुके उपदेसथकी जो, कै असाध्य लखि रोग अती जौ।
मरनकाल जानै जब नीरे, तब कायरता धरइन तीरे ॥७६॥
चउ अहार तजि च्यारि कषाया, तजि करि त्यागै च्यागी काया।
तन सम्बन्ध उदै मति आवौ, तनमें हमरौ नाहिं सुभावौ ॥७७॥
सोरठा—कर्म संयोगे देह, उपज्यौ सो नर रहायगो।
तातैं यासौं नेह, करनौ सो अति कुमति है ॥७८॥

चौपाई

इहै भावना धारि विरागी, तजै कारिमा काय सभागी।
सो श्रावक पावैं शुभ लोका, षोड़श सुर्ग लहै सुख थोका ॥७९॥
नर ह्वै फिर मुनिके व्रत धारे, सिद्ध लोककों शीघ्र निहारे।
सल्लेखण सम व्रत न दूजा, इह सल्लेषण त्रिभुवन पूजा ॥८०॥
तजि कषाय त्यागै बुध काया, सो सन्यास महा फलदाया।
सल्लेखण सन्यास समाधी, अनसन एक अर्थ निरुपाधी ॥८१॥
पंडित मरणा वीरिय मरणा, ये सब नाम कहैं जु सुमणा।
समरणते कुमरण सब नासे, अविनासी पद शीघ्र प्रकासे ॥८२॥
यह सन्यास न आपतघाता, कर्म विघाता है सुखदाता।
अर जो शठकरि तीव्र कषाया, जलमें डूबि मरे भरमाया ॥८३॥
जीवत गड़े भूमिमें कुमती, सो पावे दुरगति अति विमती।
अगनि दाह ले अथवा विष करि, तजै मूढ़धी काया दुखकरि ८४

शस्त्र प्रहारि जो त्यागै प्राणा, अथवा झंझापात वखाणा।
ए सब आतम घात वताये, इन करि वड़ भव भव भरमाये ॥८५
हिंसाके कारण ये पापा, हैं जु कषाय प्रदायक तापा।
तिनको क्षीण पारिवौ भाई, सो सन्यास कहैं जिनराई ॥८६॥
जीवदयाकौ हेतु समाधी, विना समाधि मिटै न उपाधी।
दया उपाधि मिटै विन नाहीं, तातैं दया समाधि ही माहीं ।८७।
व्रत शीलनिकौ सर्वस एही, इह संन्यास महा सुख देही।
मुनिकों अनशन शिवसुख देई, अथवा सुर अहमिंद्र करेई ॥८८॥
श्रावककों सुर उत्तम कारै, नर करि मुनि करि भवदधि तारै।
उभय धर्मकौ मूल समाधी, मेटै सकल आधि अर व्याधी ॥८९॥
कायर मरणें बहुत हि मूवा, अब धरि वीर मरण जगदूवा।
बहुत भेद हैं अनशनके जी, सबमें आराधन चउ ले जी ॥९०॥
दरसन ज्ञान चरन तप शुद्धा, ए चारौं ध्यावैं प्रतिबुद्धा।
निश्चय अर व्यवहार नयनि करि, चउ आराधन सेवै चित करि ॥९१
ताकौ सुनहु विचारि पवित्रा, जा करि छूटै भव भ्रम मित्रा।
देव जिनेसर गुरु निरग्रन्था, सूत्र दयामय जैन सुपन्था ॥९२॥
नव तत्वनिकी श्रद्धा करिवौ, सो व्यवहार सुदर्शन धरिवौ।
निश्चै अपनो आतमरामा, जिनवर सो अविनश्वरधामा ॥९३॥
गुण-पर्याय स्वभाव अनन्ता, द्रव्यथकी न्यारे नहिं सन्ता।
गुण-गुणिको एकत्व सुलखिवौ, आतमरुचि श्रद्धाकौ धरिवौ ॥९४
करि प्रतीति जु तत्वतनी जो, हनै कर्मकी प्रकृति घनी जो।
सो सम्यकदर्शन तुम जानों, केवल आतम भाव प्रधानों ॥९५॥

भाई, सम्यकज्ञानमयी सुखदाई।
, जिनवानी परमान सुवेदा ॥९६॥
[illegible] जानै, भयौ जु दासा बाध प्रवानै।
इह व्यवहारतनों हि स्वरूपा, निश्चय जानै हूॅ जु अरूपा ॥९७॥
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध प्रबुद्धा, अतुल शक्ति रूपी अनुरुद्धा ॥९८॥
चेतन अनन्त गुणातम ज्ञानी, सिद्ध सरीखौ लोक प्रवानी।
अपनो भाव भायवौ भाई, सा निश्चय ज्ञान जु शिवदाई ॥९९॥
फुनि सुनि सम्यकचारित रतना, त्रसथावरकौ अतिही जतना।
आचरिवौ भक्ती जिन मुनिकी, आदरिवौ विधि जोहि सुपुनकी॥
पंच महाव्रत पंच सुसमिती, तीन गुपति धारै हि जु सुजती।
अथवा द्वादस व्रत सुधरिवौ, श्रावक संजमकौ अनुसरिवौ ॥१॥
ए सब है विवहार चरित्रा, निश्चय आतम अनुभव मित्रा।
जो सुस्वरूपाचरण पवित्रा, थिरता निजमें सो सु पवित्रा ॥२॥
ए रतनत्रय भाषे भाई, चौथो सम्यकतप सुखदाई।
व्यवहारें द्वादस तप सन्ता, अनसन आदि ध्यान परजन्ता ॥३॥
निश्चै इच्छाकौ जु निरोधा, पर परणति तजि आतम सोधा।
अपनो आतम तेजकरी जो, सो तप भाषहि कर्महरी जो ॥४॥
ए चउ आराधन आराधै, सो सन्यास धरै शिव साधै।
अरहन्ता सिद्धा साधा जे, केवलि कथित सुधर्म दया जे ॥५॥
ए चउ शरणा लेइ सु ज्ञानी, ध्यावै परम ब्रह्मपद ध्यानी।
णमोकार मंतर जपतौ जो, ओंकार प्रणवै रटतौ जो ॥ ६ ॥

सोऽहं अजपा अनाहद सुनतो, श्रीजिन बिम्ब चित्तमां मुनतो ।
धर्मध्यान भरन्यो धोरी, लगी जिनेसुर पदमां डोरी ॥ ७ ॥
ध्यावंतो जिनवर गुन धीरो, निजरस रातौ विरकत वीरो ।
दुर्बल देह अनेह जगतसों, करि कषाय दुर्बल निज धृतिसों ॥८॥
क्षमा करै सब प्राणी गणसों, त्यागै प्राण लाय लव जिणसों ।
सो पण्डितमरणा जु कहावै, ताकौ जस श्रुतिकेवलि गावै ॥९॥
सल्लेखणके बहुतेभेदा, भापे जिनमत पाप उछेदा ।
है प्रायोपगमन सब माहें, उत्तमसों उत्तम सक नाहें ॥१०॥
ताकौ अर्थ सुनो मनलाये, जाकरि अपनों तत्व लखाये ।
प्राय: कहिये मित्र सर्वथा, उप कहिये स्वसमीप निर्ग्रंथा ॥११॥
गमन जु कहिये जाग्रत होवौ, रात दिवस कबहूं नहिं सोवौ ।
सो प्रायोपगमन सन्यासा, सर्व गुणाकरि धर्म अभ्यासा ॥१२॥
निजकों बारम्बार चितारै, क्षण क्षण चेतन तत्व निहारै ।
जग संतति तजि होइ इकाकी, कीरति गावै श्रीगुरु ताकी ॥१३॥
तजै आहार विहार समस्ता, भजै विचार समस्त प्रशस्ता ।
इह भव परभवकी अभिलाषा, जिन करि होइ निरीह अभासा ॥
या जड़ तनकी सेवा आपुन, करै न करावै विधिसों थापुन ।
अति वैराग्य परायण सोई, तजै अनातम भाव सबोई ॥१५॥
गहन वनें भू सज्जा धारी, निसप्रह जगतजोगथी भारी ।
चित्त दयाल सहनशीलो जो, सहै परीषह,नहिं ढीलौ जो ॥१६॥
जा उपसर्ग थकी नहिं कंपै, जाकौ कायरता नहिं चंपै ।
भागो लोक प्रपंचथकी जो, परपरणति जातैं दिसिकी जो ॥१७॥

या सन्यास थकी जो प्राणा, त्यागै सो नहिं मुवौ सुजाणा।
सुर-शिवदायक है यह व्रता, यामैं बुधजन करे प्रवृत्ता ॥१८॥
पञ्च अतीचारी जो त्यागै, तब सन्यास-पंथकों लागै।
सो तजि पांचूं ही अतिचारा, ये तो सल्लेखण व्रत धारा ॥१९॥
जीवित अभिलाषा अघ पहिला, ताकों सो गिनि लौ यह गहिला।
देखि प्रतिष्ठा जीयौ चाहै, सो सल्लेखण नहि अवगाहै ॥२०॥
दूजौ मरण तनीं अभिलाषा, जो धारै निज रस नहिं चाखा।
रोग कष्ट करि पीड्यो अति गति, मरिवौ चाहै सोशठमति।२१।
तीजौ सुहृदनुराग सुगनिये, मित्रथकी अनुराग सु धरिये।
मरिवौ आनि बन्यूं परि मित्रा, मिल्यौ न हमसों जाहु पवित्रा ॥
दूरि जु सज्जन तामैं भावा, मिलिवेको अति करहि अपावा।
अथवा मित्र कनारे जो है, ताके मोक्षथकी मन मोहे ॥ २३ ॥
यों अज्ञानथकी भव भरमै, पावै नहिं सल्लेखण धरमैं।
पुनि सुखानुबंधो है चोथो, सुख संसार तनों सहु थोथौ ॥२४॥
या तनमें भुगते सुख भोगा, सो सब यादि करैं शठ लोगा।
यों नहि जानें भव सुख दुख ए, तीन कालमैं नाहीं सुख ए ॥
इनकों सुख जानें जो भाई, भोदू इनसों चित्त लगाई।
सो दुख लहै अनंता जगके, पावै नहिं गुण जे जिनगमके ॥२६॥
पञ्चम दोष निदान प्रबंधा, जो धारइ सो जानहु अन्धा।
परभवमैं चाहे सुख भोगा, यों नहिं जानें ए सहु रोगा ॥२७॥
इन्द्र चन्द्र नागेन्द्र नरेन्द्रा, हूवौ चाहे फुनि अहमिन्द्रा।
व्रतकों बेचै विषयनि साटे, सो जड कर्मबंध नहिं काटे ॥२८॥

ए पाचों तजि धरइ समाधी, सो पावै सद्गति निरुपाधी ।
या व्रत सम नहिं दूजौ कोई, सबमैं सार जु इह व्रत होई ॥२९॥
याकौ जस सुर नर मुनि गावैं, धीर चित्त यासों लव लावैं ।
नमों नमों या सुमरणकों है, जो काटै जलदी कुमरणको है ॥३०॥
दोहा—उदै होउ सल्लेखणा, जाहि निवारे भ्रांति ।
आव बोध जु घटि विषैं, पइये परम प्रशान्ति ॥३१॥
कहे वरत द्वादश सबै, अर सल्लेखण सार ।
अब सुनि तप द्वादश तनों, भेद निर्जराकार ॥३२॥
प्रथमहिं बारह तपविषैं, है अनशन अविकार ।
जाहि कहैं उपवास गुरु, ताकौ सुनहु विचार ॥३३॥
इन्द्रिनिकी उपसांतता, सो कहिये उपवास ।
भोजन करते हू मुनो, उपवासे जनदास ॥३४॥
जो इन्द्रिनिके दास हैं, अज्ञानी अविवेक ।
करैं उपासा तउ शठा, नहिं व्रत धार अनेक ॥३५॥
मुनि श्रावक दोऊनिकों, अनसन अति गुणदाय ।
जाकरि पाप विनाश ह्वै भाषैं श्रीजिनराय ॥३६॥
इन्द्रिनिकों उपशांत करि, करै चित्तकौ रोध ।
ते उपवासे उत्तमा, लहैं आपकौ बोध ॥३७॥
गनि उपवासे ते नरा, मन इन्द्रिनिकों जीति ।
करैं वास चेतनविषैं, शुद्धभावसों प्रीति ॥३८॥
इस भव परभव भोगकी, तजि आशा ते धीर ।
करम-निर्जरा कारणें, करैं उपास सु वीर ॥३९॥

आतम ध्यान धरैं बुधा, कै जिन श्रुत अभ्यास।
तब अनसनकौ फल लहै, केवल तत्त्व अभ्यास ॥४०॥
चऊ अहार विकथा चऊ, तजिवौ चारि कषाय।
इन्द्री विषया त्यागिबौ, सो उपवास कहाय ॥४१॥
द्वै विधि अनसनका कहैं, महामुनी श्रुतिमाहिं।
सावधि निरवधि गुण धरा, जाकरि कर्म नशाहिं ॥४२॥
एक दिवस द्वै तीन दिन, च्यारि पांच पखवार।
मासी द्वय त्रय च्यारि हू, मास छमास विचार ॥४३॥
वर्षावधि उपवास करि, करै पारनों जोहि।
सावटि अनसन तप भया, भाषै श्रीगुरु सोहि ॥४४॥
आयु-कर्म थोरौ रहै, तब ज्ञानी व्रत धीर।
जावोजीव तजैं सबै, अनसन पान जगवीर ॥४५॥
मरणावधि अनसन करैं सो निरवधि उपवास।
जे धारैं उपवासलौं, तेजु करैं अवनाश ॥४६॥
करते थके उपासकों, जे न तजै आरम्भ।
जग धन्धमें चित धरैं, तजै न शठमति दम्भ ॥४७॥
माहगहल चञ्चल दशा, लहै न फल उपवास।
कछुयक काय कलेशको, फल पावै जगवास ॥४८॥
कर्मनिर्जरा फल सही, सो नहिं तिनकों होइ।
इह निश्चै सतगुरू कहैं, धारैं बुधजन सोइ ॥४९॥
धन्य धन्य उपवास है देइ सासतौ वास।
अब सुनि अवमोदर्य को, दूजौ तप सुखरास ॥५०॥

जो मुनि करैं अनादरी, तजि अहारकी वृद्धि।
प्रासुक योग सु अलप अति, ले अहार तप-वृद्धि ॥५१॥
करैं सु अमोदर्यकों, करै निर्जरा हेत।
नहि कीरतिको लोभ है, सो मुनि जिन पद लेत ॥५२॥
श्रावक होइ जु व्रत करै, लेइ अलप आहार।
जप स्वाध्याय सु ध्यान ह्वै, मिटै अनेक विकार ॥५३॥
संध्या पोसह पडिक्रमण, तासौं सधै अदोष।
जो अहार बहुत न करै, धरै महागुण कोष ॥५४॥
कै अनसन अघ नाश कर कै यह अवमोदर्य।
इन सम और न जगविषैं, ए तप अति सौंदर्य ॥५५॥
इन विन कदै न जो रहै, सो पावै व्रतशुद्धि।
ध्यान कारवें जो करै, सो होवै प्रतिवुद्ध ॥५६॥
अरु जो मायावी अधम, धरि कीरतिकौ लोभ।
करै सु अलप अहारकों, सो नहिं होइ अछोभ ॥५७॥
अथवा जो शठ अंध थी, यह विचार जियमाहिं।
करै सु अलप अहार जो, सोहू व्रतधारि नाहि ॥५८॥
जो करिहों जु अहार अति, तो जैसो तैसो हि।
मिलिहैं मोदक स्वादकरि, तातें इह न भलौ हि ॥५९॥
अलप अहार जु खाहुंगो, वहुत रसीली वस्तु।
इहै भावधरि जो करै, सो नहिं व्रत प्रशस्त ॥६०॥
मिष्ट भोज्य अथवा सुजस,—कारण अल्प अहार।
करै न फल तपकौ प्रवल, कर्म निर्जराकार ॥६१॥

केवल आतमध्यानके, अर्थ करैं व्रतधार ।
कैं स्वाध्याय सु व्रनके, कारण अल्प अहार ॥६२॥
अल्प अहारथकी बुधा, रोग न उपजैं क्वापि ।
निद्रा मनमथ आदि सहु, नाहि पारै ज़ु कदापि ॥६३॥
बहु अहार सम दोष नहिं, महा रोगकी खानि ।
निद्रा मनमथ प्रमुख जो, उपजै पाप निदान ॥६४॥
लौकमाहिं कहवत इहै, मरै मूढ़ अति खाय ।
कै बिन बुद्धि ज़ु बोझकों, भोंदू मरै उचाय ॥६५॥
तातैं घनों न खाइबौ, करिबो अलप अहार ।
याहि करैं सतगुरु सदा, व्रतकौ बीज अपार ॥६६॥
व्रतपरिसंख्या तीसरौ, तप ताकों सु विचार ।
सुनें सुगुरु भाषैं भया, परम निर्जराकार ॥६७॥
मुनि उतरैं आहारकों, करि ऐसी परतिज्ञ ।
मनमैं तौऊ छांटकों (?) सो धारो तुम विज्ञ ॥६८॥
एक घरे नहिं पाय हो, तौ न आन घर जाहुं ।
और कछू नहिं खायहों, यह मिलि हैं तौ खाहुं ॥६९॥
अथवा ऐसी मन धरैं, या विधिके तन चीर ।
पहिरे होगी श्राविका, तौ लेहूँ अन नीर ॥७०॥
तथा विचारै जो सुधी, कारौ बलधा जाहि ।
धरै सींग परि गुडडला, मिलै पंथमैं मोहि ॥७१॥
जाऊं भोजन कारनें, नांतरि नहीं अहार ।
इत्यादिक जे अटपटी, करैं प्रतिज्ञा सार ॥७२॥

व्रतपरि संख्या तप लहै, मुनिराय महंत।
श्रावक हू इह तप करैं, कौन रीति सुनु संत ॥७३॥
प्रातहि संख्या विधि करैं, धारइ मतरा नेम।
तामम कबहू व्रत करैं, परिसंख्यामों प्रेम ॥७४॥
धारि गुप्ति चितवें सुधी, अपने चित्त मंझार।
साखि जिनेश्वर देव हैं, ज्ञायक ज्ञेय अपार ॥७५॥
और न जानें बात इहु, जो धारैं बुध नेम।
नहीं प्रेम भवभावमों, जप तप व्रतमों प्रेम ॥७६॥
अनायास भोजन समैं, मिलि हैं मोहि कदापि।
रूखी रोटी मूंगकी, लेहं और न क्वापि ॥७७॥
इत्यादी जे अटपटी, धरैं प्रतिज्ञा धीर।
व्रतपरिसंख्या तप लहैं, ते श्रावक गंभीर ॥७८॥
अब सुनि चौथा तप महा, रस परित्याग प्रवीन।
मुनि श्रावक दोऊनिकों, भाषैं आतमलीन ॥७९॥
अति दुखको सागर जगत, तामैं सुख नहिं लेश।
चहुंगति भ्रमण जु कब मिटै, कटै कलंक अशेष ॥८०॥
जगके झूठे रस सबै, एक रसस अतिसार।
इहै धारना धर सुधा, होइ महा अविकार ॥८१॥
भवतैं अति भयभीत जो, डरयौ आनणत धीर।
निर्वानी निर्मान जो, चाखैं निजरस वीर ॥८२॥
विषहूते अति विषम जे, विषया दुखकी खानि।
भवभव मोकूं दुख दियौ, सुख परणतिकों मांनि ॥८३॥

तातैं इनकौ त्यागकरि, धरौं ज्ञानको मित्र ।
तप जो भव आतप हरै, कारण पुनीत पवित्र ॥८४॥
इह चितवतौ धीर जो, रसपरित्याग करेय ।
नीरस भोजन लेयकै, ध्यावै आतम ध्येय ॥८५॥
दूध दही घृत तेल अर मीठौं लवण इत्यादि ।
रस तजि नीरस अन्न ले, काटै कर्म अनादि ॥८६॥
अथवा मिष्ट कषायलो, खारो खाटो जानि ।
करवो और जु चिरपरो, यह षटरस परवानि ॥८७॥
तजि रस नीरस जो भखै, सो आतमरस पाय ।
देय जलांजलि भ्रमणकौं, सीधो शिवपुर जाय ॥८८॥
भव बाकी ह्वै जो भया, ता पावै सुरलोक ।
सुरथी नर ह्वै मुनिदशा, धारि लहैं शिवथोक ॥८९॥
अथवा सिंगारादिका, नव रस जगत विख्यात ।
तिनमैं शांति सुरस गहै, जा सब रसका तात ॥९०॥
पर रस तजि जिनरस गहै, जाके रस नहिं रोष ।
सो पावै समभावकौं, दूरि करै सहु दोष ॥९१॥
रसपरित्याग समान नहि, दूजौ तप जगमांहिं ।
जहां जीभके स्वाद सहु, त्यागै संशय नाहिं ॥९२॥
अब विविक्त शय्यासना, पंचम तप सुनि वीर ।
राग द्वेषके हेतु जे, आसन सज्जा चीर ॥९३॥
तजि मुनिवर निरग्रन्थ ह्वै, बसैं आपमैं धीर ।
तन खीणा मन उनमना, जगतरूढ़ गंभीर ॥९४॥

पूजा हमरी होयगी, बहुत भजेंगे लोक ।
इह वांछा नहिं चित्तमैं, सही हरष अर शोक ॥९५॥
सकल कामनारहित जे, ते साधू शिवमूल ।
पापथकी प्रतिकूल ह्वै, भये ब्रह्म अनुकूल ॥९६॥
तेसंसार शरीर अरु, भोगथको जु उदास ।
अभ्यंतर निज बोध धर, तप कुशला जिनदास ॥९७॥
उपशमशीला शांतधी, महासत्व परवीन ।
निवसैं निर्जन वनविषैं, ध्यान लीन तनखीन ॥९८॥
गिरिसिर गुफा मंझार जे, अथवा बसैं मसान ।
भूमि माहिं निरव्याकुला, धीर वीर बहु जान ॥९९॥
तरुकोटर सूना घरी, नदीतीर निवसंत ।
कर्म-क्षपावन उद्यमी, ते जैनी मतिवंत ॥१००॥
कंकरीला धरती विषैं, विषम भूमिमैं साध ।
तिष्टै ध्यावै तत्वकौं, आराधन आराधि ॥१॥
जगवासिनकी सगती, ध्यान विघनकौ मूल ।
तातैं तजि जड़ संगती, भये ज्ञान अनुकूल ॥२॥
स्त्री पशु-बाल-विमूढ़की, संगति अति दुखदाय ।
कायरकी संगति थकी, सूरापन विनसाय ॥३॥
जे एकांत बसैं सुधी, अनेकांत धरि चित्त ।
ते पावैं परमेसुरो, लहि रतनत्रय वित्त ॥४॥
मुनिकी रीति कही भया, मुनि श्रावककी रीति ।
जा विधि पंचम तप करैं, धरि जिन वचन प्रतीत ॥५॥

निज नारीहूतैं विरत, परनारीकौ वीर ।
शीलवान शांतिक अती, तप धारैं अति धीर ॥६॥
परनारीकी सेज अर, आसन चीर इत्यादि ।
कबहुं न भींटै भव्य जो, तजै काम रागादि ॥७॥
निज नारीहुकों तजै जौ लग त्याग न होय ।
तौ लग कबहुंक सेवही, बहुत राग नहिं कोय ॥८॥
एक सेज सोवै नहीं, जुदौ जु सोवै जोहि ।
जब विविक्त शय्यासना, पावै तप अति सोहि ॥९॥
करै परोस न दुष्टको, तजे दुष्टकौ संग ।
विसतोतैं दूरी रहै, पालै व्रत अभग ॥१०॥
जे मिथ्यामत धारका, अलगौ तिनसौं होइ ।
जिनधरनोकी संगति, धारै उत्तम सोइ ॥११॥
कुगुरु कुदेव कुधर्मकौ, करै न जो विश्वास ।
है विश्वासी जैनको, जिनदासनिकौ दास ॥१२॥
सामायक पोषा समै, गहै इकंत सुथान ।
सा विविक्तशय्यासना, भाषै श्री भगवान ॥१३॥
करनौं पंचम तप भया, अब छट्ठो तप धार ।
काय कलेश जु नाम है, कह्यौ सूत्र अनुसार ॥१४॥
अति उपसर्ग उदै भयौ, ताकरि मन न डिगाय ।
क्षमावान शांतिक महा, मेरु समान रहाय ॥१५॥
देव मनुज तिरजंच कृत, अथवा स्वतै स्वभाव ।
उपजौ जो उपसर्ग है, तामै निर्मल भाव ॥१६॥

खेद न आने चित्तमैं, कायकलेश सहेय।
सो कलेश नहिं पावई, ज्ञान शरीर लहेय ॥१७॥
गिरि सिर ग्रीषममैं रहै, शीतकाल जलतीर।
वर्षाऋतु तरुतल बसइ, सो पावै अशरीर ॥१८॥
आतापन जोग जु धरै, कष्ट सहै जु अशेष।
अति उपवास करै सुधी, सो तप काय कलेश ॥१९॥
कायलेसैं सहु मिटे, तन मनके जु कलेश।
महापाप कर्म जु कटै, गुण उपजैंहि अशेष ॥२०॥
मुनि श्रावक दोऊनिकों, करिवौ कायकलेश।
संक्लेसता भाव तजि, इह आज्ञा जगतेश ॥२१॥
वनवासीके अति तपा, घरवासीके अल्प।
अपनी शक्ति प्रमाण तप, करिवौ त्याग विकल्प ॥२२॥
ए षट बाहिज तप कहै, अब अभ्यन्तर धारि।
इह भाषैं श्रुतकेवली, जिनवाणी अनुसार ॥२३॥
दोष न करई आप जो, करवावै न कदापि।
दोषतनो अनुमोदना, करै नहीं बुध क्वापि ॥२४॥
मन वच तन करि गुण मई, निरदोषो निरुपाधि।
आनन्दी आनन्द मय, धारै परम समाधि ॥२५॥
अथवा कदै प्रमादतैं, किंचित लागै दोष।
तौ अपने औगुण सुधी, तहिं गोपै व्रतपोष ॥२६॥
श्रीगुरु पास प्रकाशई, सरल चित्तकरि धीर।
स्वामी चाग्यौ दोष मुझ, दंड देहु जगवीर ॥२७॥

तब जो गुरु दंड दे, व्रत तप दान सुयोग।
सो सब श्रद्धा तैं करें, पावे पंथ निरोग ॥२८॥
ऐसी मनमैं ना धरै, अलप हुतौ यह दोष।
दियौ दंड गुरुने महा, जाकरि तनकौ सोष ॥२९॥
सबै त्यागि शंका सुधी, सकल विकलपा डारि।
प्रायश्चित्त करै तपा, गुरु आज्ञा अनुसारि ॥३०॥
बहुरि इच्छै दोषकों, त्यागे मन वच काय।
देहनत सौ टूक ह्वै, तौहु न दोष उपाय ॥३१॥
या विधिके निश्चे सहित, वरते ज्ञानी जीव।
ताके तप ह्वै सातमौ, भाषे त्रिभुवन पीव ॥३२॥
जो चिंतवै निजरूपकों, ज्ञानस्वरूप अनूप।
चेतनता मंडित विमल, सकल लोककौ भूप ॥३३॥
वार वार ही निज लखै, जांनैं वारम्वार।
वार वार अनुभव करै, सो ज्ञानी अविकार ॥३४॥
विकथा विषै कषायतैं, न्यारौ वरतै सन्त।
ता विरकतके दोष कहु, कैसे उपजै मिन्त ॥३५॥
निरदोषी बहु गुण धरै, गुणी महाचिद्रूप।
तासों परचै पाइयौ, सो तपधारि अनूप ॥३६॥
दोषतनों परिहार जो, कहिये प्रायश्चित्त।
धारै सो निजपुर लहै, गहै सासतो वित्त ॥३७॥
अब सुनि भाई आठमो, विनय नाम तप धार।
विनय मूल जिनधर्म है, विनय सु पंच प्रकार ॥३८॥

दरसन ज्ञान चरित्र तप, ए चउ उत्तम होइ ।
अर इन चउके धारका, उत्तम कहिये सोइ ॥३९॥
इन पांचनिकौ अति विनय, सो तप विनय प्रधान ।
ताके भेद सुनूं भया जाकरि पद निरवान ॥४०॥
दरसन कहिये तत्त्वकी, श्रद्धा अति दृढ़रूप ।
ज्ञान जानिवौ तत्त्वकौ, संशय रहित अनूप ॥४१॥
चारित थिरता तत्त्वमैं, अति गलतानी होइ ।
तप इच्छाकौ रोखिवौ, तन मन दण्ड न सोइ ॥४२॥
ए हैं चउ आराधना, इन विन सिद्ध न कोइ ।
इनकौ अति आराधिवौ, विनयरूप तप सोइ ॥४३॥
रतनत्रय धारक जना, तप द्वादस विधि धार ।
तिनकी अति सेवा करै, तन मन करि अविकार ॥४४॥
सो उपचार कह्यौ विनय, ताके बहुत विभेद ।
जिनवर जिन प्रतिमा बहुरि, जिनमंदिर हरषेद ॥४५॥
जिनवानी जिन तीरथा, मुनि आर्या व्रत धार ।
श्रावक और सु श्राविका, समदृष्टी अविकार ॥४६॥
इनकौ विनय जु धारिवौ, गुण अनुरागी होइ ।
सो तप विनय कहावई, धारै उत्तम सोइ ॥४७॥
जैसे सेवक लोग अति, सेवै नरपति द्वार ।
तैसे चउविधि संघकों, सेवै सो तप धार ॥४८॥
आप थकी जो उत्तमा, तिनकौ दासा होइ ।
सबसों समता भावई, विनयरूप तप सोइ ॥४९॥

व्रत बिन छोटे, आपतैं, जेसम्यक्त निवास ।
जिनधर्मी जिनदास हैं, तिनहूँसौं हित भास ॥५०॥
धर्मराग जाके भयौ, सो इह विनय धरेय ।
पञ्च प्रकार विनय करि, भवसागर उतरेय ॥५१॥
अब सुनि वैयावृत्त जो, नवमो तप सुखदाय ।
जो उपहार करै सुधी, पर दुखहर अधिकाय ॥५२॥
हरै सकल उपसर्ग जो, ज्ञानिनिके तपधार ।
सुधी वृद्ध रोगीनिकौ, करै सदा उपगार ॥५३॥
महिमादिक चाहै नहीं, निरापेक्ष व्रतधार ।
वैयावृत्त करै भया, जिनबाणी अनुसार ॥५४॥
मुनिकों उचित मुनी करै, टहल मुनिनिकी धीर ।
मुनि सेवासम नाहि कोउ, त्रिभुवनमें गंभीर ॥५५॥
श्रावक भोजन पथ्य दे, औषधि आश्रम आदि ।
करै भक्ति साधुनिकी, इह विधि है जु अनादि ॥५६॥
जो ध्यावे स्वेरूपको, सर्व विकलपा टारि ।
सम दम भाव हि दृढ़ धरै, वैयावृत्त सो धारि ॥५७॥
सम कहिये समदृष्टिता, सकल जीवकों तूल्य ।
देखैं ज्ञान विचारतैं, इह दृष्टी जु अतुल्य ॥५८॥
दम कहियें मन इन्द्रियां, दमै महा तप धारि ।
चित्त लगावै आपसौं, सहै लोककी गारि ॥५९॥
तजै लोक व्यवहारकों, धरै अलौकिक वृत्ति ।
सो चउगतिकों दे जला, पावै महा निवृत्ति ॥६०॥

सुनों सुबुद्धी कान धरि, दसमो तप स्वाध्याय ।
सर्व तपनिमैं है सिरै, भाषैं त्रिभुवनराय ॥६१॥
नहि चाहै जु महंतता, करवावे नहिं सेव ।
चाह नहीं परभावकी, सेवै श्रीजिनदेव ॥६२॥
दुष्ट विकलपनिकों भया, जो नासन समरत्थ ।
सो पावै स्वाध्यायकों, फल केवल परमत्थ ॥६३॥
तत्त्व सुनिश्चै कारनें, करैं शुद्ध स्वाध्याय ।
सिद्धि करैं निज ऋद्धिकों, सो आतम लवलाय ॥६४॥
आगम अध्यातममई, जिनवरकौ सिद्धान्त ।
ताहि भक्तिकरि जो पढ़ै, सो स्वाध्याय सुकांत ॥६५॥
केवल आतम अर्थ जो, करैं सूत्र अभ्यास ।
अपनी पूजा नहिं चहै, पावै तत्त्व अध्यास ॥६६॥
अपने कर्म कलङ्कके, काटनकों श्रुतपाठ ।
करैं निरन्तर धर्मधी, नासै कर्म जु आठ ॥६७॥
भेद पंच स्वाध्यायके, उपाध्याय भाषेहिं ।
जे धारैं ते शांतधी, आतम रस चाखेहिं ॥६८॥
कही वाचना पृच्छना, अनुप्रेक्षा गुरु देव ।
आमनाय फुनि धर्मको, उपदेशौ बहुभेव ॥६९॥
ग्रन्थ बांचवौ वांचना, पृछना पूछनरीति ।
बारम्बार विचारिवौ, अनुप्रेक्षा परतीति ॥७०॥
आमनायकौ जानिवौ, जिनमारगकी वीर ।
धर्म कथन करिवौ सदा, कहैं धर्मधर धीर ॥७१॥

निसप्रेमी भवभावतैं, जो स्वाध्याय करेय।
सो पावै निजज्ञानकों, भवसागर उतरेय ॥७२॥
जो सेवैं जिनसूत्रकों, जग अभिलाष धरेय।
गव धरै विद्यातनों, सो चउगति भरमेय ॥७३॥
हम पडित बहुश्रुत महा, जानैं सकल जु अर्थ।
हमहिं न सेवै मूढ़धी, देखौ बड़ौ अनर्थ ॥७४॥
इहै वासना जो धरै, सो नहिं पंडित कोइ।
आतम भावे जो रमैं, सो बुध पंडित होइ ॥७५॥
मान बढ़ाइ कारनैं, जे श्रुति सेवैं अन्ध।
ते नहिं पावैं तत्त्वकों, करै कर्मकौ बन्ध ॥७६॥
जैनसूत्र मद मान हर, ताकरि गवित होय।
ताहि उपाय न दूसरौ, श्रमैं जगतमें सोय ॥७७॥
अमृत विषरूपी भयौ, जाकौ और इलाज।
कहौ, कहा जु बताइये, भाषैं पण्डितराज ॥७८॥
जो प्रतिकूल विमूढ़धी, साधर्मिनतें होइ।
पढ़िवौ गुनिवौ तासके, हालाहल सम जोइ ॥७९॥
राग द्वेष करि परिणम्यूं, करै असूत्र अभ्यास।
सो पावै नहि धर्मकों, करै न कर्म विनास ॥८०॥
युद्ध कथा कामादिका, कुकथा, चावै मूढ़।
लोक-रिझावन कारणों, सो पद लहै न गूढ़ ॥८१॥
जो जानें निजरूपकूं, अशुचि देहतैं भिन्न।
सो निकसै भवकूपतें, भटकै भाव अभिन्न ॥८२॥

जानै निज पर भेद जो, आतमज्ञान प्रवीन।
सो स्वामी सब लोककौ, सदा शांतरसलीन ॥८३॥
लखिवौ आतम भावकौ, सो स्वाध्याय बखानि।
मुनि श्रावक दोऊनिकौ, यह परमारथ जानि ॥८४॥
अब सुनि ग्यारम तप महा, काया-सग्ग शिवदाय।
कायाकौ उतसर्ग जा, निर्ममता ठहराय ॥८५॥
त्याग्यौ बैठ्यौ देहकौ, नहीं देहसौं नेह।
लग्यौ रंग निजरूपसौं, बरसै आनद मेह ॥८६॥
छिदौ भिदौ ले जाहु कोउ, प्रलय होउ निजसंग।
यह काया हमरी नहीं, हम चेतन चिद अङ्ग ॥८७॥
इहै भावना उर धरै, जल-मल लिप्त शरीर।
महारोग पीड़ै तऊ, भजै न औषध धीर ॥८८॥
व्याधितनौं न उपायकौं, शिवकौ करै उपाय।
इन्द्री-विषय न सेवई सेवै चेतनराय ॥८९॥
भयौ विरक्त जु भोगतैं, भोजन सज्जा आदि।
काहूकी परवा नहीं, भेटौ ब्रह्म अनादि ॥९०॥
निजस्वरूप चिंतवन जग्यौ, भग्यौ भोगकौ भाव।
लग्यौ चित चेतन थकी, प्रकट्यौ परम प्रभाव ॥९१॥
शत्रु मित्र सहु सम गिनै, तजै राग अरु दोष।
बंध-मोक्षतैं रहित निज, रूप लख्यौ गुण कोष ॥९२॥

बेसरी छन्द।

विरकत पुरुषनिकों भाई, इह कायोतसर्ग सुख-दाई।
रु जे तन पोषन है लागा, तेपावैं नहिं भाव विरागा ॥९३॥
पकरणादिकमैं मन राखैं, ते नहिं ज्ञान सुधारस चाखैं।
ग विवहार तजै नहिं जौलों, नहिं कायोत्सर्ग तप तौलों ।९४।
ाम त्यागकौ है उतसर्गा, कंपैं नहि जो है उपसर्गा।
ब कायोतसर्ग तप पावैं, निज चेतनमों चित्त लगावैं ॥९५॥
एक दिवस द्वै दिवसा भाई, पाख मास ऊभौ हि रहाई।
चउमासी छहमासी वर्षा, रहै जु ऊभौ चितमैं हरषा ॥९६॥
रहि निजज्ञान भयौ अति पुष्टा, जाहि न बेरै विकलप दुष्टा।
सो कायोत्सर्ग तपधारी, पावैं शिवपुर आनन्दकारी ॥९७॥
मुनिके यह तप पूरण होई, श्रावकके किंचित तप जोई।
श्रावक हू नहिं देहसनेही, जानों आतम तत्त्व विदेही ॥९८॥
मरणतनों भै तिनके नाहीं, ते कायोत्सर्ग तपमाहीं।
अब मुनि बारम तप है ध्याना, जो परसाद लहै निजज्ञाना ॥९९॥
अन्तर एक महूरत काला, सो एकाग्रचित व्रत पाला।
ताकौ नाम ध्यान है भाई, च्यारि भेद भाषें जिनराई ॥१००॥
द्वै प्रशस्त द्वै निंद्य वखानैं, श्रुत अनुसार मुनिनने जानैं।
आरति रौद्र अशुभ ए दोऊ, धर्म सुकल अति उत्तम होऊ ॥१॥
आरति तीव्र कषायें होई, महा तीव्रतैं रौद्र जु सोई।
मन्द कषायें धर्म सु ध्याना, जाहि न पावैं जीव अज्ञाना ॥२॥

धर्मध्यानतैं सुकल सु ध्याना, सुकलध्यानतैं केवलज्ञाना।
रहित कषाय सुकल है सुधा, जा सम और न ध्यान प्रबुधा ॥३॥
चारि ध्यान ए भाषैं भाई, तिनके सोला भेद कहाई।
ते तुम सुनहु चित्त धरि मित्रा, त्यागौ आरति रौद्र विचित्रा ॥४॥
आरतिके चउ भेद जु खोटे, पशुगति दायक औगुण मोटे।
इष्टवियोग अनिष्टसंजोगा, पीरा चिन्तन होइ अजोगा ॥५॥
चौथो बंधनिदान कहावै, जो जीवनिकौ भव भरमावै।
वस्तु मनोहरकौ जु वियोगा, होय तबै धारै शठ सोगा ॥६॥
इष्ट वियोगारत सो जानौं, दुःखतरुवरकौ मूल बखानौं।
दूजौ भेद अनिष्ट सजोगा, ताकौ भाव सुनौ भविलोगा ॥७॥
वस्तु अनिष्ट मिले जब आई, शोच करैं तब भोंदू भाई।
भववनमें भरमैं शठमति सो, पाप बांधि पावै दुरगति सो ॥८॥
रोगनिकरि पीड्या अति शठजन, आरति धारजो अपने मन।
सो पीरांचिंतवन है तीजौ, आरतध्यान सदा तजि दीजौ ॥९॥
चौथो आरति त्यागौ भाई, बंधनिदान महा दुखदाई।
जपतपव्रत करि चाहैं भोगा, ते जगमाहिं महाशठ लोगा ॥१०॥
ए चारों आरति दुखदाई, भवकारण भाषैं जिनराई।
रौद्रध्यानके चारि विभेदा, अब सुनि जे दायक अतिखेदा ॥११॥
हिंसाकरि आनन्द जु मानै, हिंसानंदी धर्म न जानै।
मृषावाद करि धरै अनंदा, मृषानन्द सो जियकौ फन्दा ॥१२॥
चोरीतैं आनंद उपजावै, सो अघ चौर्यानन्द कहावै।
परिग्रह बढ़े होय आनन्दा, सो जानौं जु परिग्रहनन्दा ॥१३॥

ए चउ भेद हरें सुख साता, दुरमतिरूप उग्र दुखदाता।
पर विभूतिकी घटती चाहैं, अपनी संपति देखि उमाहैं ॥१४॥
रौद्रध्यानके लक्षण एई, त्यागें धन्नि धन्नि हैं तेई।
आरति रुद्र ध्यान ए खोटा, इनकरि उपजै पाप जु मोटा ॥१५॥
दुखके मूल सुखनिके खोवा, ए पापी हैं जगत डबोवा।
चउ आरतिके पाये भाई, तिर्यंचगतिकारण दुखदाई ॥१६॥
रौद्रध्यानके चारि ए पाये, अधोलोकके दायक गाये।
अशुभध्यान ये दोय विरूपा, लगे जीवके विकलपरूपा ॥१७॥
नरक निगोद प्रदायक तेई बसैं मिथ्यात धरामैं एई।
कबहुं कदाचित अणुव्रत ताई, काहूके रौद्र जु उपजाई ॥१८॥
महाव्रत्तलों आरतध्याना, कबहुंक छट्ठे परमित थाना।
काहूके उपजैं त्रय पाये, सप्तमठाणें सर्व नसाये ॥१९॥
भोगारति उपजै नहिं भाई, जो उपजै तौ मुनि न कहाई।
अब सुनी धर्मध्यानकी बातें, जे सहु पाप पंथकों घातें ॥२०॥
धर्म जु स्वतै स्वभाव कहावै, पंडितजन तासों लय लावै।
क्षमा आदि दशलक्षण धर्मा, जीवदया बिनु कटइ न कर्मा ॥२१॥
इत्यादिक जिन भाषित जेई, धारैं धर्म धीर हैं तेई।
धर्मविषैं एकाग्र सुचित्ता, विषैभोगसे अतिहि विरत्ता ॥२२॥
जे वैराग्यपरायण ज्ञानी, धर्मध्यानके होंहिं सु ध्यानी।
जो विशुद्धभावनिमैं लागा, जिनतैं रागदोष सह भागा ॥२३॥
एक अवस्था अंदर बाहिर निरविकल्प निज निधिके माहिर।
ध्यावै आतमभाव सुधीरा, ह्वै एकाग्रमना वर वीरा ॥२४॥

जे निजरूपा हैं समभावा, ममत वितीता जग निरदावा।
इन्द्री जीति भये जु जितिन्द्री, तिनकों ध्यानी कहैं अतिन्द्री ॥
चितवन्ता चेतन गुण धामा, ध्यानहिं लीना आतमरामा।
निरमोही निरदुन्द सदा ही, चितमैं कालिम नाहिं कदाही ।२६।
जहि अनुभवैं निज चितधनकों, रोकैं मनकों सोकैं मनकों।
आनन्दी निज ज्ञानस्वरूपा, तिनके धर्म रु ध्यान निरूपा ॥२७॥
मैत्री मुदिता करुणा भाई, अर मध्यस्थ महासुखदाई।
एहि भावना भावै जोई, धर्मध्यानको ध्याता सोई ॥२८॥
सर्वजीवसों मैत्रीभावा, गुणी देखि चितमैं हरषावा।
दुखी देखि करुणा उर आनैं, लखि विपरीत राग नहिं ठाने ।२९॥
द्वेष जु नाहिं धरै जु महन्ता, मध्यस्थ महा गुणवन्ता।
बहुरि धर्मके चारि जु पाया ते समयकदृष्टिनिकों भाया ॥३०॥
आज्ञाविचय कहावै जोई, श्रीजिनवरने भाष्यौ सोई।
ताको दृढ़ परतीत करै जो, संसय विभ्रम मोह हरै जो ॥३१॥
कर्म नाशकौ उद्यम ठानै, रागद्वेषकी परणति भानै।
सौ अपायविचयो है दूजौ, तिरै जगतथो धारै तू जौ ॥३२॥
करै उपाय शुद्ध भावनिकौ, अर निरवाणपुरि पावनको।
तीजौ नाम विपाकविचै है, भवभावनितैं भिन्न रहै हैं ॥३३॥
शुभके उदै संपदा आवै, अशुभ उदै आपद बहु पावै।
दोऊ जानै तुल्य सदाही, हर्ष-विषाद धरै न कदा ही ॥३४॥
फुनि संठाणविचय है चौथौ, सर्व जगतकों जानैं थोथौ।
तीन लोकको जानि सरुपा, जिनमारग अनुसार अनूपा ॥३५॥

सबकौ भूषण चेतनराया, चेतनसों नहि दूजो माया।
सर्व लोकसूं छांडि जु प्रीती, चेतनकी धारै परतीती ॥३६॥
चेतन भावनिमैं लौ लावै, अपनौ रूप आपमैं ध्यावै।
ए हैं धरमध्यानके भेदा, सुकल प्रदायक पाप उछेदा ॥३७॥
चौथे गुणठाणों होइ धर्मा, संपूरण गुण ठाणों परमा।
धर्मध्यानके चउ गुणठाणा, ते देवाधिदेवने जाणा ॥३८॥
अहमिन्द्रादिक पद फल ताकौ बरणे जाहिं न अति गुण जाकौ।
कारण सुकल ध्यानकौ एही, धर्मध्यानतैं सुकल जु लेही ॥३९॥
मुनि श्रावक दोऊके गाया, धर्मध्यान सो नहीं उपाया।
मुनिको पूरणरुप प्रवानों, श्रावकके कछु नून बखानों ॥४०॥
मुनिके अति ही निश्चलताई, श्रावकके किंचित थिरताई।
परिग्रह चंचलताकौ मूला, जातैं धर्म न होय सथूला ॥४१॥
पैतृष्णा छाडी बहुतेरी, करि मरजादा परिग्रहकेरी।
तातैं धर्मध्यानके पात्रा, श्रावक हू जाणों गुनगात्रा ॥४२॥
धर्मध्यानके च्यारि स्वरूपा, और हु श्रीगुरु कहे अनूपा।
इक पिंडस्थ पदस्थ द्वितीया, रूपस्था तीजौ गनि लीया ॥४३॥
रूपातीत चतुर्थम भेदा, हद धर्म को पाप उछेदा।
इनके भेद सुनो मन लाये, जाकरि सुकलध्यानकूं पाये ॥४४॥
पिंडमाहिं सब लोक विभूति, चितवैं ज्ञानी निज अनुभूति।
पिंडलोककौ राजा चेतन, जाहि स्पर्श सकै न अचेतन ॥४५॥
ताकौ ध्यान धरै जो ध्यानी, सो होवै केवल निज ज्ञानी।
बहुरि पदस्थ ध्यान बुध धारै, जिनभाषित पद मन्त्र विचारै ॥४६॥

पंच परमगुरू मंत्र अनादि, ध्यावै धीर त्याग क्रोधा
नमोकारके अक्षर भाई, पैंतीसौ पूरण सुखदाई ।।४७
षोड़स अक्षर मंत्र महंता, पंच परमगुरु नाम कहन्ता
मंत्र षड़ाक्षर अरहत सिद्धा, असि आउसा पंच प्रबुद्धा ।।४८।।
नमोकारके पैंतिष अक्षर, प्रसिद्ध छै अरु षोड़स अक्षर ।
अरहत सिद्ध आयरि उवझाया, साहू जपैंते अंक गिनाया ।४९।
चउ अक्षर अरहंत जपौ जु, सिद्ध नाम उरमाहिं थपौ जु ।
द्वै अक्षर भूलौ मति भाई, सिद्ध-सिद्ध यह जाप कराई ।।५०।।
मंत्र इकाक्षर है ओंकारा, ब्रह्मबीज इह प्रणव अपारा ।
पंच परमपद या अक्षरमै, याहि ध्याय जगमैं नहिं भरमैं ।।५१।
शुक्ल रूप अति उज्जल सजला, ध्यावै प्रणवातैं हैं विमला ।
सोऽहं सोऽहं अजपाजापा, हरै संतके सब सन्तापा ।।५२।।
इह सुर सबही प्राणिगणके, होवै श्वास उश्वास सबनिके ।
पै नहिं याकौ भेद जु पावै, तातैं भोंदू भव भरमावै ।।५३।।
जो यह नाद सुनैं वरवीरा, पावै शुक्लध्यान गुणधीरा ।
उज्जलरूप दाय ए चंका, ध्यावै सो नास अघपंका ।।५४।।
जिनवर सो नहि देव जु कोई, अजपा सो नहि जाप सु होई।
मंत्र अनेक जिनागम गाये, ते ध्यानो पुरषनिने ध्याये ।।५५।।
सबमै पंच परम गुरू नामा, पंच इष्ट बिन मंत्र निकामा ।
मंत्राक्षरमाला जो ध्यावें, नाम पदस्थ ध्यान सो पावै ।।५६।।
अब सुनि तीजौ भेद सु भाई, है रूपस्थ महा सुखदाई ।
कतृम और अकतृम मूरत, जिनवरकी ध्यावै शुभ सूरत ।५७।

जिनवरको साकार स्वरूपा, तेरम गुणठाणं जु अनूपा।
अतिसै प्रातिहार्य धर स्वामी, धरै अनंत चतुष्टय नामी ॥५८॥
समवसरण शोभित जिमदेवा, ताहि चितारै उर धरि सेवा।
फुनि नजि रूप रंग गुणवाना, ध्यावै चौथो भेद सुजाना ॥५९॥
रूपातीत समान न कोई, धर्म ध्यानकौ भेद जु होई।
ध्यावें सिद्धरूप अतिशुद्धा निराकार निर्लेप प्रवुद्धा ॥६०॥
पुरुषाकार अरूप गुसाईं निर्विकार निरदूषन साईं।
वसु गुण आदि अनन्त गुणाकर, अवगुणरहित अनन्त प्रभाधर ।६१।
लाकशिखर परमेश्वर राजै, केवलरूप अनूप विराजै।
जितकौं उर अन्तर जे ध्यावैं, रूपातीत ध्यानते पावै ॥६२॥
सिद्ध समान आपकौं देखैं, निश्चयनय कछु भेद न पेखैं।
विवहारेः प्रभुके हम दासा, निश्चय शुद्ध बुद्ध अविनाशा ॥६३॥
ए च्यारूं ध्यावैं जो धर्मा, तेहि पिछानैं श्रुतिको मर्मा।
धर्म ध्यान चहुंतगतिमैं होई, सम्यक विन पावै नहिं कोई ।६४।
छट्टम सत्तम मुनिके ठाणा, पंचम ठाणें श्रावक जाणा।
चौथे अव्रत सम्यकज्ञानी, तेऊ धर्मध्यानके ध्यानी ॥६५॥
चौथेसौं ते सप्तमताई, धर्मध्यानको कहैं गुसाईं।
धर्मध्यान परभाव सुज्ञानो, नासै दस प्रकृति निजध्यानी ॥६६॥
प्रथम चौकरी तीन मिथ्याता, सुर नारक अर आयु विख्याता।
अष्टमसौं चौदमलौं सुकली, सुकल समान न कोई विमली ।६७।
सुकलध्यान मुनिराज हि ध्यावैं, सुकलकरी केवलपद पावैं।
सुकल नसावै प्रकृति समस्ता, करै सुकल रागादि विध्वस्ता ।६८।

जौ निज आतममाँ लव लावै, सुकल तिनोंके श्रीगुरु गावैं।
शुकलध्यानके चारि जु पाये, ते सर्वज्ञदेवने गाये ॥६९॥
द्वै सुकला द्वै सुकल जु पर्मा, जानै श्रीजिनवर सहु मर्मा।
प्रथम पृथक्क वितर्क विचारा, पृथक नाम है भिन्न प्रचारा ॥७०॥
भिन्न भिन्न निज भाव विचारै, गुण पर्याय स्वभाव निहारै।
नाम वितर्क सूत्रकौ होई, श्रुति अनुसार लखै निज सोई ॥७१॥
भाव थकी भावांतर भावै, पहलो शुकल नामसो पावै।
दूजो है एकत्व वितर्का, अवीचार अगणित दुति अर्का ॥७२॥
भयौ एकतामैं लवलीना, एकी भाव प्रकट जिन कीना।
श्रुत अनुसार भयौ अविचारी, भेदभाव परणति सब टारी ।७३।
तीजौ सूक्षम किरियाधारी, सूक्षम जोग करै अविकारी।
चौथो जोगरहित निहकिरिया, जाहि ध्याय साध भवतिरिया ।७४।
अष्टम ठाणोँ पहलो पायो, बारमठाणें दूजौ गायो।
तीजौ तेरमठाणोँ जानोँ, चौथौ चौदमठाणोँ मानोँ ॥७५॥
इनके भेद सुनौं धरि भाव, जिनकर नासै सकल विभाव।
होंहि पवित्रभाव अधिकाई, जे अबतक ह्वै नहि भाई ॥७६॥
भाव अनंत ज्ञान सुख आदी, तिनकौ धारक वस्तु अनादी।
लिये अनंता शक्ति महंती, धरैं विभूति अनंतानंती ॥७७॥
अपनी आप माहि अनुभूती, अति अनंतता अतुल प्रभूती।
अपने भाव तेहि निज अर्था और सबै रागादि अनर्था ॥७८॥
अपनो अर्थ आपमें जाने, आतम सत्ता आप पिछानैं।
इक गुणतैं दूजौ गुण जावै, ज्ञानथकी आनन्द बढ़ावै ॥७९॥

गुण अनंतमैं लीलाधारी, सो पृथकत्व वितर्क विचारी ।
अर्थ थकी अर्थान्तर जावै, निज गुण सत्ता माहिं रहावै ॥८०॥
योगथकी योगान्तर गमना, राग दोष मौहादिक वमना ।
शब्दथकी शब्दांतर सोई, ध्यावै शब्दरहित ह्वै सोई ॥८१॥
व्यंजन नाम शुद्ध परजाया, जाकौ नाश न कबहुं बताया ।
वस्तु शक्ति गुणशक्ति अनन्ती, तेई पर्यय जानि महन्ती ॥८२॥
व्यंजनतें व्यंजन परि आवै, निज स्वभाव तजि कितहुन जावै ।
श्रुति अनुसार लखै निजरूपा, चिनमूरति चैतन्य स्वरूपा ॥८३॥
जैनसूत्रमैं भाव श्रुतो जो प्रगटै अनुभव ज्ञानमती जो ।
सो पृथकत्ववितर्क विचारा, ध्यावै साधू ब्रह्म विहारा ॥८४॥

दोहा—जानि पृथकत्व अनन्तता, नाम वितर्क सिद्धंत ।
है विचार अविचार निज, इह जानों विरतन्त ॥८५॥

वेसरी छन्द ।

लेश्या सुकल भाव अति शुद्धा, मन वच काय सबै जु निरुद्धा ।
यामैं एक और है भेदा, सो तुम धारहु टारहु खेदा ॥८६॥
उपसमश्रेणी क्षपक जु श्रैणी, तिनमैं क्षायक मुक्ति निसैनी ।
पहला शुक्ल जु दोऊ धारै, दूजौ क्षपकविना न निहारै ॥८७॥
उपशम बारै ग्यारम ठाणा, परस्परै उत्तरै गुणठाणा ।
जो कदाचि भवहूतें जाई, तौ अहमिन्द्रलोकको जाई ॥८८॥
नर ह्वै करि धारै फिर धर्मा, चढ़ै क्षपकश्रेणी जु अपर्मा ।
क्षपक श्रेणिधर धीर मुनिन्द्रा, होवै केवलरूपजिनिन्दा ॥८९॥

बारम ठाणों दूजौ सुकला, प्रकटै जा सम और न विमला।
दू मैं क्षपश्रेणि अधिकाई, कहीं जाय नहिं क्षपक बढ़ाई ॥६०॥
अष्टम ठाणें प्रगटे श्रेणी, सप्तमलौं श्रेणी नहिं लेणी।
क्षपक श्रेणिधर सुकल निवासा, प्रकृति छतीस नवें गुणनासा ६१
दशमें सूक्षम लोभ छिपावै, दशमाथी बारमकौं जावैं।
ग्यारमको पैंडो नहिं लेवै, दूजौ सुकलध्यान सुख वेवै ॥६२॥
साधकताकी हद्द बताई, बारमठाण महा सुखदाई।
जहां षोड़सा प्रकृति खिपावै, शुद्ध एकतामें लव लावै ॥६३॥
सोरठा—मार्‌यौ मोह पिशाच, पहले पायेसे श्रीमुनि।
तजौ जगतकौ नाच, पायो ध्यायौ दूसरौ ॥६४॥
है एकत्ववितर्क, अवीचार दूजौ महा।
कोटि अनंता अर्क, जाकौ सौ तेज न लहै ॥६५॥
ज्ञानावरणीकर्म, दर्शनावरणी हू हते।
रह्यौ नाहिं कछु मर्म, अन्तराय अन्त भयौ ॥६६॥
निरविकल्प रस माहि, लीन भयौ मुनिराज सो।
जहां भेद कछु नाहिं, निजगुण पर्ययभावतैं ॥६७॥
द्रव्य स्वत्र परताप, भावछत्र दर्स्यौ तहां।
गयो सकल सन्ताप, पाप पुण्य दोऊ मिटे ॥६८॥
एक भावमैं भाव, लखै अनन्तानन्त ही।
भागे सकल विभाव, प्रगटे ज्ञानादिक गुणा ॥६६॥
अपनों रूप निहार, केवलके सन्मुख भयौ।
कर्म गये सब हारि, लरि न सकै जासें न कोऊ ॥१००॥

एकहि अर्थे लीन, एकहि शब्दै माहिं जो।
एकहि योग प्रवीण, एकहिं व्यंजन धारियौ ॥१।
एकत्व नाम अभेद, नाम बितर्क सिधन्तकौ।
निरविचार निरवेद, दूजौ पायौ इह कह्यौ ॥२॥
जहां विचार न कोय, भागे विकलप जाल सहु।
क्षीणकषायी होइ, ध्यानारूढ़ भयौ मुनी ॥३॥
दूजौ पायो येह, गायौ गुरु आज्ञा थकी।
करै कर्मकौ छेद, अब सुनि तीजौ शुकल तू ॥४
सुक्षम किरिया नाम, प्रगटै तेरम ठाण जो।
जो निज केवल धाम, श्रुतज्ञानीके है परे ॥५॥
लोकालोक समस्त, भासै केवल बोध मैं।
केवल सो न प्रशस्त, सर्व लोकमैं और कोउ ॥६
जे अघातिया नाम, गोत्र वेदनी आयु हैं।
तिनकों नाशै राम, परम शुकल केवल थकी ॥७
पच्यासी पच्यासी प्रकृति जु, जिनके ठाणों तेरं
जरी जेवरी सी जु, तिनकूं नाशे सो प्रभू
सुक्षमक्रिया प्रवृत्ति, ध्यावै तीजौ शुकल सो।
वादरजोग निवृत्ति, कायजोग सुक्षम रहै ॥९॥
करै जु सूक्षम जोग, तेरम गुणके छेहु रै।
पावै तबै अजोग, चौदम गुणठाणें प्रभू ॥१०
तहां सु चौथौ ध्यान, है ज समुच्छिन्न किया।

गई प्रकृति समस्त, सो ऊपरि अड़ताल जे।
भये भाव जड़ अस्त, चेतन गुण प्रगटे सबै ॥१३॥
करनी सकल उठाय, कृत्यकृत्य ह्वौ प्रभू।
सो चौथो शिवदाय, परम शुकल जानों भया ॥१४॥
पंच लघुक्षर काल, चौदम ठाणें थिति करै।
रहित जगत जंजाल, जगत शिखर राजै सदा ॥१५॥
बहुरि न आवै सोय, लोकशिखामणि जगततैं।
त्रिभुवनको प्रभु होय, निराकार निर्मल महा ॥१६॥
सबकी करनी सोइ, जानैं अंतरगत प्रभू।
सर्व व्यापको होइ, साखीभूत अव्यापको ॥१७॥
ध्यान समान न कोई, ध्यान ज्ञानको मित्र है।
सौ निज ध्यानी होइ, ताकों मेरी वंदना ॥१८॥
धर्म मूल ए दोय, ध्यान प्रशंसा योग्य हैं।
आरति रुद्र न होय, सो उपाय करि जीव तू ॥१९॥
धर्म अगनिकौ दीप, शुकल रतनकौ दीप है।
निज गुण आप समीप, तिनकों ध्यावौ लोक तजि ॥२०॥
ध्यान तनू विस्तार, कहि न सकै गणधर मुनी।
कैसे पावैं पार, हमसे अलपमती भया ॥२१॥
तप जप ध्यान निमित्त, ध्यान समान न दूसरी।
ध्यान धरौ निज चित्त, जाकर भवसागर तिरौ ॥२२॥
तपकूं हमरी ढोक, जामै ध्यान जु पाइये।
मेटै जगकौ शोक करै कर्मकी निर्जरा ॥२३॥

अनशन आदि पवित्र, ध्यान लगै तप गाइया।
बारा भेद विचित्र, सुनों अबै समभाव जो ॥२४॥
(इति द्वादश तप निरूपणम्)

समभाव वर्णन

(छप्पय छन्द)

राग दोष अर मोह, एहि रोकै समभावैं।
जिनकरि जगके जीव, नाहिं शिवथानक पावैं॥
तेरा प्रकृति जु राग, दोपकी बारा जानों।
मोहतनी हैं तीन, अट्ठाईस बखानों॥
एक माहके भेद, दो दर्शन चारित्र ए।
दर्शन मोह मिथ्यात भव, जहां न सम्यक सोहए॥२५॥
राग द्वेष ए दोय, जानि चारित्र जु मोहा।
इनकरि तप नहीं व्रत्त, ए पापी पर द्रोहा॥
इनकी प्रकृति पचीस, तेहि तजि आतमरामा।
छांड़ौ तीन मिथ्यात, यही दोषनिके धामा॥
स्वपर विवेक विचार बिना, धर्म अधर्म न जो लखै।
सो मिथ्यात अनादि प्रथम ताहि त्यागि निज रसचखै।२६।
दूजो मिश्र मिथ्यात, होय तीजे गुण ठाणें।
जहां न एक स्वभाव, शुद्ध आतम नहि जाणे॥
सत्य असत्य प्रतीति होय, दुविधामय भावैं।
ताहि त्यागि गुणखानि, शुद्ध निज भाव लखावैं॥

तीजे समय प्रकृति मिथ्यात, समकितमें उद्वेगकर (?)
भला दोयत तीसरो, तरपन चंचलभाव धर ॥२७॥

दोहा—कहे तीन मिथ्यात ए, दर्शन मोह विकार।
अब चारित्र जु मोहको, भेद गुनो निरधार ॥२८॥
कही कषाय जु षोड़सा, नोकषाय नव भेलि।
ए पच्चीसों जानिये, राग दोषकी केलि ॥२९॥
चउ माया चउ लोभ अर, हासि रती त्रय वेद।
ए तेरा हैं रागकी, देहि प्रकृति अति खेद ॥३०॥
च्यारि क्रोध अर मान चउ, अरति शोक भय जानि।
दुरगंधा ये द्वादशा, प्रकृति दोपकी मानि ॥३१॥
लगीं अनादि जु कालकी, भरमावैं जु अनन्त।
विनसैं भव्यनिके भया, हुँ न अभविके अन्त ॥३२॥
रोकैं सम्यकदृष्टिकों, रोकैं सकल विभाव।
ढोकैं मिथ्यादृष्टिकों, नहि जामें समभाव ॥३३॥
अनंतानुबन्धी इहै, प्रथम चौकरी जानि।
त्यागे तीन मिथ्यातजुत, सो समदृष्टी मानि ॥३४॥

(छप्पय छन्द)

समकित बिनु नहिं होत, शांतिरूपी समभावा।
चौथे गुण ठाणों जु कछुक, समभाव लखावा ॥
द्वितीय चौकरी बहुरि, सोहु अव्रतमय भाई।
नाम अप्रत्याख्यान, जा छतें व्रत न पाई ॥

दोय चौकरी तीन मिथ्या, त्याग होय श्रावकव्रती ।
प्रगटै गुणठाण जु पंचमैं, पापनिकी परणति हती ॥३५॥
चढ़ैं तहां समभाव, होय रागादिक नूना ।
अव्रततैं गनि ऊंच, साधूव्रतनितैं ऊना ॥
तृतीय चौकरी जानि, नाम है प्रत्याख्यानी ।
रोकै मुनिव्रत एह, ठाण छट्ठो शुभध्यानी ॥
तीन चौकरी तीन मिथ्या छांडि साधू ह्वै संजमी ।
वृद्धि होय समभावई, मन इन्द्री सवही दमी ॥३६॥
दोहा—चौथी संजुलना सही रोकै केवलज्ञान ।
जाके तीव्र उदै थकी, होय न निश्चल ध्यान ॥३७॥

(छप्पय छन्द)

चौथी चौकरी टरै, नाम सजुलन जवै ही ।
नो-कषाय नव भेद, नाशि जावै जु सवै ही ॥
यथाख्यात चारित्र, उपजै बारम ठाणों ।
पूरण तव समभाव, होय जिनसूत्र प्रमाणों ॥
क्रोध मान छल लोभ च्यारूं, एक एक चउभेद ए ।३८।
दोहा—अनंतानुबंधी प्रथम, द्वितीय अप्रत्याख्यान ।
तीजी प्रत्याख्यान है, चौथी है संजुलान ॥३६॥
कही चौकरी चार ए, चारों गतिकी मूल ।
च्यारितनी सोला भई, भेद मोक्ष प्रतिकूल ॥४०॥
हास्य अरति रति शोक भय, दुरगंधा दुखदाय ।
नोकषाय ए नव कहो, पंचवीस समुदाय ॥४१॥

राग दोषकी प्रकृत ए कहौ पचीस प्रमान ।
तीन मिथ्यात समेत ए, अट्ठाईस बखान ॥४२॥
जावैं जबै सब ही भया, तब पूरण समभाव ।
यथाख्यात चारित्र ह्वै, क्षीणकषाय प्रभाव ॥४३॥
मुनिके जातैं अलप है, छटैं सातमें ठाण ।
पन्द्रा प्रकृति अभावतें, ता माफिक समजाण ॥४४॥
श्रावकके यातैं अलप, पंचम ठाणों जाण ।
ग्यारा प्रकृति गया थकीं, ता माफिक परवाण ॥४५॥
श्रावकके अणुवृत्त है, इह जानों निरधार ।
मुनिके पंचमहाव्रता, समिति गुपति अविकार ॥४६॥
श्रावकके चौथे अलप, चौथौ अव्रत ठाण ।
तहां सात प्रकृती गई, ता माफिक ही जाण ॥४७॥
गुणठाणा समभावके, ह्वै ग्यारा तहकीक ।
चौथे सूं ले चौदमा, तक नहि बात अलीक ॥४८॥
चौथे जघनि जु जानिये, मध्य पंचमे ठाण ।
छट्टासू दसमा लगै, बढ़तो बढ़तो जाण ॥४९॥
बारम तेरम चौदवें, है पूरण समभाव ।
जिन शासनको सार इह भवसागरकी नाव ॥५०॥

छप्पय ।

छट्टमसोले.........जुगल मुनीके जाणा ।
तिनकौ सुनहु विचार, जैनशासन परवाणा ॥

छट्टम सप्तम ठाण, प्रकृति पंद्रा जब त्यागी।
तीन मिथ्यात विख्यात, चौकरी इक तीन अभागी॥
तब उपजै समभावई, श्रावकके अधिकौ महा।
पैं तथापि तेरा रही, तातैं पूरण नहिं कहा॥५१॥
रही चौकरी एक, और गनि नो-कषाय नव।
तिनकौ नाश करेय, सो न पावैं कोई भव॥
छट्टे तीव्र जु उदै, सातवें मंद जु इनकौ।
इनमें षट हास्यादि, आठवें अन्त जु तिनकौ॥
क्रोध मान अर कपट नो, वेद तीनही नहिं था।
चौथे चौकरि लोभसू—क्षण दश ठाण विनाशिया॥५२॥

छन्द चाल।

एकादशमा, द्वादशमा फुनि तेरम अर चौदशमा।
समभावतने गुणथाना, ए च्यारि कहे भगवाना॥५३॥
ग्यारम है पतन स्वभावा, डिगि जाय तहां समभावा।
बारहमैं परम पुनीता, जासम नहिं कोई अजीता॥५४॥
तेरम चौदम गुणठाणा, परमातमरूप बखाना।
समभाव तहां है पूरा कीये रागादिक चूरा॥५५॥
नहि यथाख्यात सौ कोई, समभाव सरूपी सोई।
इह सम उतपत्ति बताई, रागादिक नाश कराई॥५६॥
अब सुनि सम लक्खण संता, जा विधि भाषैं भगवंता।
जीबौ मरिबौ सम जानै, अरि मित्र समान बखानैं॥५७॥

सुख दुख अर पुण्य जु पापा, जानै सम ज्ञान प्रतापा।
सब जीव समान विचारै, अपनेसे सर्व निहारैं ॥५८॥
चिंतामणि पाहन तुल्या, जिनके सम भाव अतुल्या।
सुरगति अर नर्क समाना, सब राव रंक सम जाना ॥५९॥
जिनके घरमैं नहिं ममता, उपजी सुखसागर समता।
वन नगर समान पिछानैं, सेवक साहिब सम जानैं ॥६०॥
समसान महल सम भावै, जिनके न विषमता आवै।
है लाभ अलाभ समाना, अपमान मान सम जाना ॥६१॥
गिरि ग्रीष्म समान जिनूंके, सुर कीट समान तिनूके।
सुरतरु विषतरु सम दोऊ, चन्दन कर्दम सम होऊ ॥६२॥
गुरु शिष्य न भेद विचारैं, समता, परिपूरण धारैं।
जानै सम सिंह सियाला, जिनके समभाव विशाला ॥६३॥
संपति विपता द्वै सरिखी, लघुता गुरुता सम परखी।
कंचन लोहा सम जाके, रंच न है विभ्रम ताके ॥६४॥
रति अरति हानि अर वृद्धि, रज सम जानैं सब ऋद्धि।
खर कुंजर तुल्य पिछानैं, अहि फूलमाल सम जानैं ॥६५॥
नारी नागिन मम देखैं, गृह कारागृह सम पेखैं।
सम जानैं इष्ट अनिष्टा, सम मानैं अबलि बलिष्टा ॥६६॥
जे भोग रोग सम जानैं, सब हर्ष राग सम मानैं।
रस नीरस रंग कुरंगा, सुसबद सम अंगा ॥६७॥
शीतल अर उष्ण समाना, दुरगंध सुगंध प्रमाना।
नहिं रूप कुरूप जु भेदा, जिनके समभाव निवेदा ॥६८॥

चक्री अर निरधन दोई, कछु भेदभाव नहिं होई।
चक्राणी अर इन्द्राणी, अति दान नारि सम जाणी ॥६९॥
इन्द्र नागेन्द्र नरेन्द्रा, फुनि सर्वोत्तम अहमिन्द्रा।
सूक्षम जीवनि सम देखैं, कछु भेद भाव नहिं पेखैं ॥७०॥
थुति निंदा तुल्य गिनैं जो, पापनिके पुंज हनैं जो।
कृमि कुन्थकृष्ण सम तुल्या, पायौ समभाव अतुल्या ॥७१॥
सेवा उपसर्ग समाना, वैरी बांधव सम माना।
जिनके द्विज शूद्र सरीखा, सीखो सद्गुरुकी सीखा ॥७२॥
बंदै निंदै सो सरिखौ, ममभावन तन जिन परिखौ।
समतारस पूरण प्रगट्यौ, मिथ्यात महाभ्रम विघट्यौ ॥७३॥
तिनकी लखि शांत सुमुद्रा, रौद्रजु त्यागै अति रुद्रा।
चीता मृगवर्ग न मारैं, अति प्रीति परस्पर धारैं ॥७४॥
गरुड़ा नहिं नाग बिनासै, नागा नहि दादर नासै।
उन्दर मारै न विडाला, पंखिनसौं प्रीति विशाला ॥७५॥
तिर विद्याधर नर कोई, सुर असुर न बाधक होई।
काहूकूं राव न दंडैं, दुरजन दुरजनता छंडै ॥७६॥
काहूके चोर न पैसे, चोरी होवै कहु कैसे।
लखि समता धारक मुनिकों, त्यागै पापी पापनिकों ॥७७॥
डाकिनके वीर न चालैं, हिंसक हिंसा सब टालै।
भूता नहिं लागन पावै, राक्षस व्यंतर भजि जावै ॥७८॥
मंतर न चलैं जु किसीके ये हैं परभाव रिपीके।
कोहू काहू नहिं मारै, सब जीव मित्रता धारै ॥७९॥

हरिनी मृगपतिके छावा, देखै निज सुत समभावा।
बाघनिकूं गाय चुखावै, माजरी हंस खिलावै ॥८०॥
स्याली अर मीढ़ा इकठे, नाहर बकरा हैं बैठे।
काहूंकौ जोर न चालै, समभाव दुःखनिकौं टालै ॥८१॥
इह ब्रह्म सुविद्या रूपा, निरदोष विराग अनूपा।
अति शांतिभावकौ मूला, समसौ नहिं शिव अनुकूला।८२।
नहिं समता पर छै कोऊ, सब श्रुतकौ सार जु होऊ।
जो ममताकौ परित्यागा, सो कहिये सम बड़भागा॥८३॥
मन इंद्रीकौ जु निरोधा, सो दम कहिये प्रतिबोधा।
समतैं क्रोधादि नशाया, दमतैं भोगादि भगाया॥८४॥
सम दम निवारण प्रदाया, काहे धारौं नहिं भाया।
सब जैन सूत्र समरूपा, समरूप जिनेश्वर भूपा॥८५॥
समताधर चउविधि संघा, समभाव भवोदधि लंघा।
पूरण सम प्रभुके पइये, तिनतैं लघु मुनिके लइये॥८६॥
तिनतैं श्रावकके नूना सम करै कर्मगण चूना।
श्रावकतैं चौथे ठाणैं, कछुइक घट तो परमाणैं॥८७॥
सम्यक विन समता नाहीं, सम नाहिं मिथ्यामत माहीं।
ममता है मोह सरूपा, समता है ज्ञान प्ररूपा॥८८॥
सब छोड़ि विषमता भाई, ध्यावौ समता शिवदाई।
समकी महिमा मुनि गावै, समको सुरपति शिर नावै।८९।
समसौं नहिं दूजौ जगमें, इह सम केवल जिनमगमें।
सम अर्थ सकल तप वृत्ता, सम है मारग निरवृत्ता॥९०॥

जो प्राणी समरस भावै, सो जनम मरण नहि पावै।
यम नियमादिक जे जोगा, सबमैं समभाव अलोगा ॥६१॥
समकौ जस कहत न आवै, जो सहस जीभकरि गावै।
अनुभव अमृतरस चाखै, सोई समता दृढ़ राखै ॥६२॥

इति समभाव निरूपण

सम्यक वर्णन

सवैया ३१ सा।

अष्ट मूलगुण कहे बारह वरत कहे कहे तप द्वादश जु
मभाव साधका। समसान कोऊ और सर्वकौ जु सिरमौर,
ाही करि पावे ठौर आतम अराधका। विषमता त्यागि अर
मताके पंथ लागि, छाड़ौ सब पाप जेहि धर्मके विराधका।
पारै पड़िमा जु भेद दोषनिकौ करै छेद, धारै नर धीर धरि
कै नाहिं बाधका ॥६३॥

ोहा—पड़िमा नाम जु तुल्यकौ, मुनिमारगकी तुल्य।
मारग श्रावककौ महा, भाषैं देव अतुल्य ॥६४॥
बहुरि प्रतिज्ञाकौं कहैं, पड़िमा श्री भगवान।
हौंहि प्रतिज्ञा धारका, श्रावक समतावान ॥६५॥
मुनिके लहुरे वीर हैं, श्रावक पड़िमाधार।
मुनि श्रावकके धर्मको, मूल जु समकित सार ॥६६॥
सम्यक चउ गतिके लहैं, कहै कहालौं कोइ।
पै तथापि वरणन करूं, संवेगादिक सोइ ॥६७॥

सम्यकके गुण अतुल हैं, श्रावक तिर नर होय ।
मुनिव्रत मिनखहि धारही, द्विज छत्र वाणिज होय ।९८।
संवेगो निरवेद अर, निंदन गरुहा जानि ।
समता भक्ति दयालता, वात्सल्यादिक मानि ॥९९॥
धर्म जिनेसुर कथित जो, जीव दयामय सार ।
तासों अधिक सनेह है, सो संवेग विचार ॥१००॥
भव तन भोग समस्ततैं, विरकत भाव अखेद ।
सो दूजौ निरवेद गुण, करै कर्मकौ छेद ॥१॥
तीजो निंदन गुण कह्यौ, निजकों निंदै जोइ ।
मतमैं पछितावौ करैं, भव भरमणकौ सोइ ॥२॥
चौथौ गरहा गुन महा, गुरुपै भाषैं वीर ।
अपने औगुन समकिती, नहीं छिपावै धीर ॥३॥
पंचम उपशम गुण महा, उपशमता अधिकाय ।
प्रान हरै ताहूथकी, वैर न चित्त धराय ॥४॥
छट्टौ गुण भक्ती धरैं सम्यकदृष्टी संत ।
पंच परमपदकी महा, धारै सेव महंत ॥५॥
सप्तम गुण वात्सल्य जो, जिन धर्मिनसौं राग ।
अष्टम अनुकंपा गुणो, जीव दया व्रत लाग ॥६॥
उक्तञ्च गाथा-संवेऊ णिवेऊ, णिंदण गरुहा य उपसमौ भत्ती ।
वच्छल्लं अनुकंपा, अट्ठगुणा हुंति सम्मत्ते ॥७॥

चौपाई ।

भव्यजीव चहुंगतिके माहीं, पावैं समकित संसय नहीं ।

पंचेंद्री सैनी विनु कोय, और न सम्यकदृष्टी होय ॥७॥
जब संसार अलप ही रहै, तब सम्यक दरशनकों गहै।
प्रथम चौकरी तीन मिथ्यात, ए सातों प्रकृती विख्यात ॥८॥
इनके उपसमतैं जो होय, उपशम नाम कहावै सोय।
इनके क्षयतैं क्षायिक नाम, पावै मनुष महागुण धाम ॥६॥
क्षायिक मनुष विना नहि लहै, क्षायिक तुरत ही भववन दहै।
केवल आदि मूल इह होय, क्षायिक सो नहिं सम्यक कोय ॥१०॥
अब सुनि क्षय उपसमकौ रूप, तीन प्रकार कह्यौ जिनभूप।
प्रथम चौकरी क्षय है जांह, तीन मिथ्यात उपसमैं तहां ॥११॥
पहली क्षय उपशम सो जानि, जिनवानी उरमैं परवानि।
प्रथम चौकरी पहल मिथ्यात, ए पांचौ क्षय हैं दुखदात ॥१२॥
द्वै मिथ्यात उपशमैं जहां, दूजौ क्षय उपशम है तहां।
प्रथम चौकरी द्वै मिथ्यात, ए षट क्षय होवैं जड़तात ॥१३॥
तृतीय मिथ्यात उपशमैं भया, तीजौ क्षय उपशम सो लया।
वेदसम्यक च्यारि प्रकार, ताके भेद सुनों निरधार ॥ १४ ॥
प्रथम चौकरी क्षय है जहां, दोय मिथ्यात उपशमैं तहां।
तृतीय मिथयात उदै जब होय, पहलौ वेदक जानौ सोय ॥१५॥
प्रथम चौकरी प्रथम मिथ्यात, ए पांचों क्षय होय विख्यात।
द्वितिय मिथ्यात उपशमैं जहां उदै होय तीजेकौ तहां ॥१६॥
भेद दूसरौ वेदकतणों, जिनमारग अनुसारें भणों।
प्रथम चौकरी दो मिथ्यात, ए षट प्रकृति होय जब घात ॥१७॥
उदै तीसरौ मिथ्या होय, तीजौ वेदक कहिये सोय।

प्रथम चौकरी मिथ्या दोय, इन छहुँको उपशम जब होय ॥१८॥
उदै होय तीजौ मिथ्यात, सो चौथौ वेदक विख्यात ।
ए नव भेद सु सम्यक कहे, निकट भव्य जीवनिनें गहे ॥१९॥
दोहा—खैं उपशम वरतैं त्रिविध, वेदक च्यारि प्रकार ।
क्षायिक उपशम मेलि करि, नवधा समकित धार ॥२०॥
नवमे क्षायिक सारिखौ, समकित होय न और ।
अविनाशी आनंदमय, सो सबकौ सिरमौर ॥२१॥
पहली उपशम ऊपजै, पहली और न कोय ।
उपममके परसादतैं. पाछे क्षायिक होय ॥२२॥
क्षायिक विनु नहि कर्मक्षय, इह निश्चै परवानि ।
क्षायक दायक सर्व ए, सम्यकदर्शन मानि ॥ २३ ॥
उपशमादि सम्यक सबे, आदि अन्त जुत जानि ।
क्षायिककौ नहिं अन्त है, सादि अनन्त बखानि ॥२४॥
सम्यकदृष्टी सर्व ही, जिनमारगके दास ।
देव धर्म गुरु तत्वको, श्रद्धा अविचल भास ॥२५॥
अनेकांत सरधा लिया, शांतभाव धर धीर ।
सप्तभंग वानो रुचै, जिनवरकी गंभीर ॥२६॥
जीव अजीवादिक सबै, जिन आज्ञा परवान ।
जाने संसै रहित जो धारै दृढ़ सरधान ॥२७॥
सप्त तत्त्व षट द्रव्य अर, नव पदार्थ परतक्ष ।
अस्थिकाय हैं पंच ही, तिनकौ धारै पक्ष ॥२८॥
इष्ट पच परमेष्टिकौ, और इष्ट नहिं कोय ।

मिष्ट वचन बोले सदा, मनमैं कपट न होय ॥२९॥
पुत्रकलत्रादिक उपरि, ममता नाहिं बखान ॥३०॥
तृण सम मानै देहकों, निजसम जानै जीव।
धारै महा उपशांतता, त्यागै भाव अजीव ॥३१॥
सेवै विषयनिकों तऊ, नहीं विषयसूं राग।
वरतै गृह आरम्भमैं, धारि भाव वैराग ॥३२॥
कबै दशा वह होयगी, धरियेगो मुनिवृत्त।
अथवा श्रावक वृत्त ही, धरियेगो जु प्रवृत्त ॥३३॥
धृग धृग अव्रतभावकों, या सम और न पाप।
क्षणभगुर विषया सबै, देहिं कुगति दुख ताप ॥३४॥
इहै भावना भावतो, भोगनितैं जु उदास।
सो सम्यकदरसी भया, पावै तत्वविलास ॥३५॥
सप्तम गुणके ग्रहणकों, रागी होय अपार।
साधुनिकी सेवा करै, सो सम्यकगुण धार ॥३६॥
साधर्मिनसौं नेह अति, नहिं कुटुम्बसौं नेह।
मन नहिं मोह-विलासमैं गिनै न अपनो देह ॥३७॥
जीव अनादि जु कालकौ, बसै देहमैं एह।
बंध्यौ कर्म प्रपंचसौं, भवमैं, भ्रमो अच्छेह ॥३८॥
त्याग जोग जगजाल सब, लेन जोग निज भाव।
इह जाके निश्चै भयौ, सो सम्यक परभाव ॥३९॥
भिन्न भिन्न जानै सुधी, जड़-चेतनकौ रूप।
त्यागै देह सनेह जो, भावै भाव अनूप ॥४०॥

क्षार नीरकी भांति ये, मिलैं जीव अर कर्म ।
नाहिं तथापि मिलें कदै, भिन्न भिन्न हैं धर्म ॥४१॥
यथा सर्पकी कंचुकी, यथा खड्गकौ म्यान ।
तथा लखैं बुध देहकों, पायौ आतमज्ञान ॥४२॥
दोष समस्त वितीत जो, वीतराग भगवान ।
ता विन दूजौ देव नहिं, इह धार सरधास ॥४३॥
सब जीवकी जो दया, ताहि सरदहै धर्म ।
गुरुमानैं सिरग्रन्थकों, जाके रंच न भर्म ॥४४॥
जपै देव अरहंतकों, दास भाव धार धीर ।
रागी दोषी देवकी, सेव तजैं वरवीर ॥४५॥
रागी दोषी देवको, जो मानैं मतिहीन ।
धर्म गिनै हिंसा विषैं, सो मिथ्या मतिहीन ॥४६॥
परिग्रह धारककों गुरु, जो जानैं जग माहिं ।
सो मिथ्यादृष्टी महा, यामैं संसै नाहिं ॥४७॥
कुगुरुकुदेव कुधर्मकों, जो ध्यावै हिय अंध ।
सो पावै दुरगति दुखी, करै पापकौ बंध ॥४८॥
सम्यकदृष्टी चिंतवै, या संसार मंझार ।
सुखकौ लेश न पाइये, दीखै दुःख अपार ॥४९॥
लक्ष्मीदाता और नहिं, जीवनिकों जगमाहिं ।
लक्ष्मी दासी धर्मकी, पापथकी विनसाहि ॥५०॥
जैसौ उदय जु आवहीं, पूरब बांध्यौ कर्म ।
तैसौ भुगतैं जीव सब, यामैं होय न भर्म ॥५१॥

पुण्य भलाई कार है, पाप बुराई कार।
सुखदुखदाता होइ यह, और न कोइ विचार ॥५२॥
निमितमात्र पर जीव हैं, इह निहचै निरधार।
अपने कीये आप ही, फल भुगते संसार ॥५३॥
पुन्यथकी सुर नर हुवै, पापथकी भरमाय।
तिर नारक दुरगति विषैं, भव भव अति दुख पाय ॥५४॥
पाप समान न शत्रु है, धर्म समा न मित्र।
पाप महा अपवित्र है, पुण्य कछुक पवित्र ॥५५॥
पुण्यपापतैं रहित जो, केवल आतम भाव।
सो उपाह निरवाणकौ जामैं नहीं विभाव ॥५६॥
झूठी माया जगतकी, झूठौ सब संसार।
सत्य जिनेसुर धर्म है, जा करि ह्वै भवपार ॥५७॥
व्यंतर देवादिकनिकौं, जे शठ लक्ष्मीहेत।
पूजै ते आपज लहैं लक्ष्मी देय न प्रेत ॥५८॥
भक्ति किये पूजे थके, जो विंतर धन देय।
तौ सब ही धनवंत ह्वैं, जग जन तिनकौं सेय ॥५९।
क्षेत्रपाल चंडी प्रमुख, पुत्र कलत्र धनादि।
देन समर्थ न कोइकौं, पूजैं शठ जन वादि ॥६०॥
जो भवितव जा जीवकौ, जा विधान करि होय।
जाहि क्षेत्र जा कालमें, निःसंदेह ह्वै सोय ॥६१॥
जान्यौ जिनवर देवने, केवलज्ञान मंझार।
होनहार संसारकौ, ता विधि ह्वै निरधार ॥६२॥

इह निश्चै जाकै भयो, सो नर सम्यकवंत ।
लखै भेद षट द्रव्यके, भावैं भाव अनंत ॥६३॥
दृढ़ प्रतीत जिनवैनको, सम्यकदृष्टी सोय ।
जाकैं संसै जीव मैं, सो मिथ्याती होय ॥६४॥

सोरठा—जो नहिं समझी जाय, जिनवाणी अति सूक्षमा ।
तौ ऐसे उर लाय, संदेह न आनै सुधी ॥६६॥
बुद्धि हमारो नन्द, कछु समझै कछु नाहिं ।
जा भाष्यौ जिनचंद, सो सब सत्यस्वरूप है ॥६७॥
उदै होयगौ ज्ञान, जब आवर्ण नसाइगौ ।
प्रगटेगौ निजध्यान, तब सब जानो जायगौ ॥६८॥
जिनवानी सम और, अमृत नहिं संसारमें ।
तीन भुवन सिरमौर, हरै जन्म जर मरण जो ॥६९॥
जिनधर्मिनसों नेह, लग्यौ नेह जिनधर्मसू ।
बरसै आनन्द मेह, भक्त भयौ जिनराजकौ ॥७०॥
सो सम्यक धरि धीर, लहै निजातम भावना ।
पावै भवजल तीर, दरसन ज्ञान चरित्ततैं ॥७१॥
ऋद्धिनमैं बड़ ऋद्धि, रतनिमें रतन जु महा ।
या सम और न सिद्धि, इह निश्चै धारौ भया ॥७२॥
योगनिमैं निज योग सम्यक दरसन जानि तू ।
हनै सदा सब शोक, है आनन्ददायी महा ॥७३॥

जोगीरासा—वंदनीक है सम्यकदृष्टी, यद्यपि व्रत न कोई ।
निंदनीक है मिथ्यादृष्टी, जो तपसी हू होई ॥

मुक्ति न मिथ्यादृष्टी पावै, तपस पावै सर्गा ।
ज्ञानी व्रत बिना सुरपुर ले तपधरि ले अपवर्गा ॥७४॥
दुरगति बंध करै नहिं ज्ञानी, सम्यकभावनि माहीं ।
मिथ्याभावनिमैं दुरगतिकौ, बंध होय बुधि नामीं ॥
समकित बिन नहिं श्रावकवृत्ती अर मुनिव्रत हू नाहीं ।
मोक्षहु सम्यक बाहिर नाहीं, सम्यक आपहि माहीं ॥७५॥
अंग निशंकित आदि जु अष्टा, धारै सम्यक सोई ।
शंका आदि दोष मल रहिता, निरमल दरसन होई ॥
जिनमारग भाषै जु अहिंसा, हिंसा परमत भाषै ।
हिंसामारगकी तजि सरधा, दयाधर्म दिढ़ राखै ॥७६॥
संदेह न जाके जिय माहीं, स्याद्वादकौ पंथा ।
पकरै त्यागि एक नयवादी, सुनै जिनागम ग्रन्था ॥
पहली अंग निसंसै सोई, दूजौ कांक्षा रहिता ।
जामैं जगकी वांछा नाहीं, आतम अनुभव सहिता ॥७७
शुभकरणी करि फल नहिं चाहै, इह भव परभवके जो ।
करै कामना रहित जु धर्मा, ज्ञानामृत फल ले जो ॥
इह भाष्यौ निःकांक्षित अंगा, अब सुनि तीजै भेदा ।
निरविचिकित्सा अङ्ग है भाई, जा करि भव भ्रम छेदा ७८
जे दश लक्खण धम धरैया, साधु शांतरस लीना ।
तिनकौ लखि रोगादिक जुक्ता, सेव करै परवीना ॥
सूग न आनै मनमैं क्यूं हीं, हरै मुनिनकी पीरा ।
सो सम्यकदृष्टी जिनधर्मा, तिरै तुरत भवनीरा ॥७६॥

चौथो अंभ अमूढ़ स्वभावा, नहीं मूढ़ता जाके।
जीवघातमैं धर्म न जाने, संसै मोह न ताके॥
अति अवगाढ़ गाढ़ परतती, कुगुरु कुदेव न पूजे।
जिन सासनकौ शरणो ले करि, जाय न मारग दूजै॥८०॥
जानैं जीवदयामैं धर्मा, दया जैन ही माहीं।
आन धर्ममैं करुणा नाहीं, परतख जीव हताई॥
जो शठ लज्जा लोभ तथा भै, करिके हिंसा माहीं।
मानै धर्म सो हि मिथ्याती, जामैं समकित नाही॥८१॥
पंचम अङ्ग नाम उपगूहन, ताकौ सुनहु विवेका।
पर जीवनिके आंखिन देखै. ढांकै दोष अनेका॥
आप जु दोष करै नहिं ज्ञानी, सुकृत रूप सदा ही।
अपने सुकृत नाहिं प्रकाशै, धरै न एक मदा ही॥८२॥

दोहा—ढांकै अपने शुभ गुणा ढांकै परके दोष।
गावै गुण परजीवके, रहै सदा निरदोष॥८३॥
जो कदाचि दूषण लगै, मन वच काय करेय।
तौ गुरु पै परकाशिकै, ताकौ दंड जु लेय॥८४॥
जप तप व्रत दानादि कर, दूषण सबै हरेय।
करै जु निंदा आपकी, परनिन्दा न करेय॥८५॥
जे परगासैं पारके, औगुन तेहि अयान।
जे परगासै आपके, ओंगुण तेहि सयान॥८६॥
जे गावैं गुन गुरुनिके, ते सद्दृष्टी जानि॥८७॥
छट्ठौ अंग कहौं अबै, थिर करणा गुणवान।

धर्म थकी विचलेनिकूं, प्रतिबोधै मतिवान ॥८८॥
थापैं धर्म मंझार जो, करै धर्मकी पक्ष।
आप डिगै नहिं धर्मतें, भावै भाव अलक्ष ॥८९॥
थिरता गुण सम्यक्तको, प्रगट बात है एह।
चित्त अथिरता रूप जो, तो मिथ्यात गिनेह ॥९०॥
सुनों सातमूं अंग अब, जिन मारगसों नेह।
निजधर्मीकूं देखि करि, बरसै आनंद मेह ॥९१॥
तुरत जात बछरानि परि, हेत करैं ज्यूं गाय।
त्यूं यह साधर्मी उपरि हेत करै अधिकाय ॥९२॥
जे ज्ञानी धरमातमा, मुनि श्रावक व्रतवंत।
आर्या और सुश्राविका, चउविधि संघ महंत ॥९३॥
तथा अव्रती समकिती, निजधर्मी जग माहिं।
तिनसों राखै प्रीति जो, यामैं संसै नाहिं ॥९४॥
तन मन धन जिनधर्म परि, जो नर वारै डारि।
सो वात्सल्य जु अङ्ग है, भाख्यौ सूत्र विचारि ॥९५॥
अष्टम अङ्ग प्रभावना, कह्यौ सुनों धरि कान।
जा विधि सिद्धान्तनि विषै, भाष्यौ श्री भगवान ॥९६॥
भांति भांति करि भासई, जिनमारकों जोहि।
करै प्रतिष्ठा जैनकी, अङ्ग आठमो होहि ॥९७॥
जिन मंदिर जिन तीरथा, जिन प्रतिमा जिनधर्म।
जिनधर्मी जिनसूत्रकी, करै सेव विन भर्म ॥९८॥
जो अति श्रद्धा करि करै, जिनशासनकी सेव।

बोलैं प्रियवाणी महा, ताहि प्रसंसै देव ॥९९॥
जो दसलक्षण धर्मकी, महिमा करै सुजान।
इन्द्रिनके सुखकों गिनै, नरक निगोद निसान ॥१००॥
कथनी करै न पारकी, फुनि फुनि ध्यावै तत्त्व।
भावै आतमभाव जो, त्यागै सर्व ममत्व ॥१॥
कहे अङ्ग ये प्रथम ही, मूल गुणनिके माहिं।
अब हु पड़िमामैं कहै, इन सम और जु नाहिं ॥२॥
बार और थुति जोग ये, सम्यकदरसन अंग।
इनकों धारैं सो सुधी, करै कर्मकौ भंग ॥३॥
अष्ट अंगकौ धारिवौ, अष्ट मदनिकौ त्याग।
षट अनायतन त्यागिवौ, अतीचार नहिं लाग ॥४॥
ते भापै गुरु पंच विधि बहुरि मूढ़ता तीन।
तजिवौ सातों विसनकौ, भय सातों नहि कीन ॥५॥
ए सब पहले हू कहै, अब हू भापैं वीर।
बार बार सम्यक्तकी, महिमा गाव धीर ॥६॥
अंग निशंकित आदि बहु, अठ गुण संवेगादि।
अष्ट मदनिको त्याग फुनि, अर वसु मूलगुणादि ॥७॥
सात विसनकौ त्यागिवौ, अर तजिवौ भय सात।
तीन मूढ़ता त्यागिवौ, तीन शल्य फुनि भ्रात ॥८॥
षट अनायतन त्यागिवौ, अर पांचों अतिचार।
ए त्रेसठ त्यागै जु कोउ, सो समदृष्टी सार ॥९॥
चौथे गुण ठाणें तनी, कही बात ए भ्रात।

है अव्रत परि जगततैं, विरकितरूप रहात ॥१०॥
नहिं चाहै अव्रत दसा, चाहै व्रतविधान ।
मनमैं मुनिव्रतकी लगन सो नर सम्यकवान ॥११॥
जैसे पकर्‌यौ चोरकूं, दे तलवार दुख घोर ।
परवस पड़ि बंधन सहै, नहीं चोरकौ जोर ॥१२॥
त्यूंही अप्रत्याख्यानने, पकर्‌यौ सम्यकवन्त ।
परवस अव्रतमैं रहै, चाहै व्रत महन्त ॥१३॥
चाहै चोर जु छूटिवौ, यथा बंधतैं वीर ।
चाहै गृहतें छूटिवौ, त्यों सम्यक धरधीर ॥१४॥
सात प्रकृतिके त्यागतैं, जेती थिरता जोय ।
तेती चौथे ठाणि है, इह जिन आज्ञा होय ॥१५॥

ग्यारा व्रत वर्णन

दोहा—ग्यारा प्रकृति वियोगतैं, होय पंचमो ठाण ।
तब पड़िमा धारै सुधी, एकादश परिमाण ॥१६॥
तिनके नाम सुनों सुधी, जा विधि कहै जिनंद ।
धारैं श्रावक धीरज, तिन सम नाहिं नरिंद ॥१७॥
दरसन प्रतिमा प्रथम है, दूजी व्रत अधिकार ।
तीजी सामायक महा, चौथो पोषहधार ॥१८॥
सचित त्याग है पंचमी, छट्ठी दिन तिय त्याग ।
तथा रात्रि अनसन व्रता, धारै तपसों राग ॥१९॥
जानों पडिमा सातवीं, ब्रह्मचर्य व्रत धार ।

तजी नारि नागिन गिनै, तजै माह जंजार ॥२०॥
लौकिक वचन न बोलिवौ, सो दशमी बड़भाग ॥२१॥
एकादशमो दोय विधि, क्षुल्लक ऐलि विवेक ।
है उदंडाहार द्वै, तिनमैं मुनिव्रत एक ॥२२॥
ऐलि महा उतकिंष्ट हैं, ऐलि समान न कोय ।
मुनि आर्या अर ऐलि ए, लिंग तीन शुभ होय ॥२३॥
भाषी एकादश सबै, प्रतिमा नाम जु मात्र ।
अब इनको विस्तार सुनि, ए सब मध्य सुपात्र ॥२४॥

चौपाई ।

थमहि दरशन प्रतिमा सुणों, आतमरूप अनूप जु मुणों ।
रशन मोक्षबीज है सही, दरशन करि शिव परसत लही ।२५।
रसन सहित मूलगुण धरै, सात विसन मन बच तन हरै ।
ान अरहंत देव नहिं कोय, गुरु निरग्रंथ विना नहिं होय ।२६।
ीव दया बिन और न धर्म, इह निह‍चै करि टारै भर्म ।
यम बिन तप होय न कदा, इह प्रतीति धारै बुध सदा ।२७॥
हली प्रतिमाको सो धनी, दरसनवंत कुमति सब हनी ।
ाठ मूल गुण विसन जु सात, भाषे प्रथम कथनमैं भ्रात ॥२८॥
ातैं कथन कियौ अब नाहिं, श्रावक वह आरम्भ तजाहिं ।
स्वारथमैं सांचौ सदा, कूड़ कपट धारै नहिं कदा ॥२९॥
रै शुद्ध व्यवहार सुधीर । पर पीराहर है जगवीर ।
म्यक दरसन दृढ़ करि धरै, पापकर्मकी परणति हरै ॥३०॥

क्रय विक्रयमैं कसर न कोय, लेन देनमें कपट न होय।
कियौ करार न लोपै जोहि, सो पहिली पड़िमा गुण होहि ।३१।
जाके उर कालिम नहिं रंच, जाके घटमें नाहिं प्रपंच।
जिन पूजा जप तप व्रत दान, धर्म ध्यान धारै हि सुजान ।३२।
गुण इकतीस प्रथम जे कहै, ते पहली पड़िमामें लहै।
अब सुनि दूजी पड़िमाधार, द्वादश व्रत पालै अविकार ॥३३॥
पंच अणुव्रत गुणव्रत तीन, शिक्षाव्रत धारै परवीन।
निरतीचार महामतिवान, जिनकौ पहली कियौ बखान ॥३४॥
अब तीजी पड़िमा सुनि संत सामायक धारी गुणवन्त।
मुनिसम सामायककी वार, थिरता भाव अतुल्य अपार ॥३५॥
करि तनकौ मनतैं परित्याग, भव भोगिनतैं होइ विराग।
धरि कायोतसर्ग वर वीर, अथवा पद्मासन धरि धीर ॥३६॥
षट षट घटिका तीनूं काल, ध्यावै केवलरूप विशाल।
सब जीवनिसूं समता भाव, पंच परमपद सेवै पांव ॥३७॥
सो सब वर्णन पहली कियौ, बारा वरत कथनमैं लियौ।
चौथी प्रतिमा पोसह जानि, पोसहमैं थिरता परवानि ॥३८॥
सो पोसहकौ सर्व सरूप, आगे गायौ अब न प्ररूप।
पोसा ध्याये साधु समान, होवै चौथी प्रतिमावान ॥३९॥
दूजी पड़िमा धारक जेहि, सामायक पोसह विधि तेहि।
धार परि इनकी सम नाहिं, नहिं थिरता तिन रंचक माहिं ॥४०॥
तीजी सामायक निरदोष, चौथ पड़िमा पोसह पोष।
पंचम पड़िमा धरि बड़भाग, करै सचित वस्तुनिकौ त्याग ॥४१॥

काचौ जल अर कोरो धान, दल फल फूल तजै बुधिवान।
छाल मूल कंदादि न चखै, कूंफल बीज अंकूर न भखै ॥४२।
हरितकायकौ त्यागी होय, जीवदयाकौ पालक सोय।
सूक्यो फल,फोड़्यो विन नाहीं, लेवौ जोगि न ग्रन्थनि माहिं ॥४३।
लोंन न ऊपरसे ले धीर, लोंन हु सचित गिनै वर वीर।
माटी हात धोयवे काज, लेय अचित्त दयाके काज ॥४४॥
खोरी तथा माटी जो जली, सोई लेय न काची डली।
पृथ्वीकाय विराधै नाहि, जीव असङ्ख कहै ता मांहि ॥ ४५ ॥
जलकायाकी पालै दया, सर्व जीवको भाई भया।
अगनिकायसों नाहिं विरोध, दयावंत पावै निज बोध ॥४६॥
पवन करै न करावै सोय, षट कायाकौ पीहर होय।
नाहिं वनस्पति करै विरोध, जिनशासनकी धरै अगोध ॥४७॥
विकलत्रय अर नर तिर्यञ्च, सबकौ मित्र रहित परपंच।
जो सचित्तकौ त्यागी होय, दयावान कहिये नर सोय ॥४८॥
आप भखै नहि सचित कदेय, भोजन सचित न औरहिं देय।
जिह सचित्तकौ कीयौ त्याग, जीता जीभ तज्यौ रसराग ॥४९॥
दया धर्म्म धारयौ तिहि धीर, पाल्यौ जैन वचन गंभीर।
अब सुनि छट्ठी प्रतिमा संत, जा विधि भाषी वीर महंत ॥५०॥
द्वै मुहूर्त जब बाकी रहै, दिवस तहां तैं अनशन गहै।
द्वै मुहूर्त जब चढ़ि है भान, तौ लग अनशनरूप बखान ॥५१॥
दिनकों शील धरै जो कोय, सो छट्ठी प्रतिमाधर होय
खान पान नहिं रैनि मझार, दिवस नारिकौ है परिहार ॥५२॥

पूछै प्रश्न यहां भवि लोग, निशिभोजन अर दिनकौ भोग।
ज्ञानी जीव न कोई करै, छट्ठी कहा विशेष जु धरै ॥५३॥
ताकौ उत्तर धारौ एह, औरनिकौ व्रत न्यून गिनेह।
मन वच तन कृतकारित त्याग, करै न अनुमोदन बड़भाग ॥५४॥
तब त्यागी कहिये श्रुति मांहि, या माहीं कुछ संसै नाहिं।
गमनागमन सकल आरम्भ, तज रैनिमें नाहिं अचम्भ ॥५५॥
महावीर वर वीर विशाल, दिनकौं ब्रह्मचर्य प्रतिपाल।
निरतीचार विचार विशेष, त्यागै पापारम्भ अशेष ॥५६॥
जैनी जिनदासनिकौ दास, जिनशासनकौ करै प्रकाश।
जो निशिभोजन त्यागी होंय, छः मासा उपवासी सोय ॥५७॥
वर्ष एकमें इहै विचार, जावो जीव लगै विस्तार।
ह्वै उपवासनिकौ सुनि वीर तातैं निशिभोजन तजि धीर ॥५८॥
जो निशिकों त्यागै आरम्भ, दिनहूं जाके अलपारम्भ।
अब सुनि सप्तम पड़िमा धनी, नारिनकूं नागिन सम गिनी ॥५९॥
धारयौ ब्रह्मचर्य व्रत शुद्ध, जिनमारगमैं भयो प्रबुद्ध।
निशि वासर नारीकौ त्याग, तज्यौ सकल जाने अनुराग ॥६०॥
मन वच काय तजी सब नारि, कृतकारित अनुमोद विचारि।
योनिरंध्र नारीकौ महा, दुरगति द्वार इहै उर लहा ॥६१॥
इन्द्राणी चक्राणी देखि, निंद्य वस्तु सम गिनै विशेष।
विषैवासनामैं नहिं राग, जानैं भोग जु काले नाग ॥६२॥
विषैमगनता अति हि मलीन, विषयी जगमै दीखै दीन।
विषय समान न वैरी कोय, जीवनिकूं भरमावै सोय ॥६३॥

शील समान न सार न कोय, भवसागर तारक है सोय।
अत्र सुनि अष्टम पड़िमा भेद, सत्रारम्भ तजै निरखेद ॥६४॥
आप करे नहिं कुछु आरम्भ, तजै लोभ छल त्यागे दम्भ।
करवावै न करै अनुमोद, साधुनिकों लखि धरै प्रमोद ॥६५॥
मन वच काय शुद्ध करि सन्त, जग धन्धा धारै न महन्त।
जीव घाततैं कांप्यौ जोहि, सो अष्टम पड़िमाधर होहि ॥६६॥
असि मसि कृषि वाणिज इत्यादि, तजै जगत कारज गनि वादि।
जाय पराये जीमै सोइ, गृह आरम्भ कछू नहिं होइ ॥६७॥
कहि करवावै नाही वीर, सहज मिलै तौ जीमैं धीर।
ले जावै कुल किरियावन्त, ताके भोजन ले बुधिवन्त ॥६८॥
जगत काज तजि आतम काज, करै सदा ध्यावै जिनराज।
दया नहीं आरम्भ मंझार, करि आरम्भ भ्रमै संसार ॥६९॥
तातै तजै गृहस्थारम्भ, जीवदयाको रोप्यौ थम्भ।
करि कुटुम्बको त्याग सुजान, हिंसारम्भ तजै मतिवान ॥७०॥
दया समान न जगमैं कोइ, दया हेत त्यागैं जग सोइ।
अत्र नवमी प्रतिमा को रूप, धारो भवि तजि जगत विरूप ॥७१॥
नवमी पड़िमा धारक धीर, तजै परिग्रहकों वर वीर।
अन्तरङ्गके त्यागै संग, रागादिकको नाहिं प्रसङ्ग ॥७२॥
बाहिरके परिग्रह घर आदि, त्यागै सर्व धातु रतनादि।
वस्त्र मात्र राखै बुधिवन्त, कनकादिक भाटै न महन्त ॥७३॥
वस्त्र हु बहु मोले नहिं गहै, अलप वस्त्र ले आनन्द लहै।
परिग्रहकों जानै दुखरूप, इह परिग्रह है पापस्वरूप ॥७४॥

जहां परिगृह लोभ तहां हि, या करि दया सत्य विनशाहि ।
हिंसारम्भ उपावै एह, या सम और न शत्रु गिनेह ॥७५॥
तजै परिगृह सो हि सुजान, तृष्णा त्याग करै बुधिवान ।
जाकी चाह गई सो सुखी, चाह करैं ते दीखै दुखी ॥७६॥
बाहिज ग्रन्थ रहित जग माहिं, दारिद्री मानव शक नाहिं ।
ते नहिं परिगृह त्यागी कहैं, चाह करन्ते अति दुख लहैं ॥७७॥
जे अभ्यंतर त्यागैं सङ्ग, मूर्च्छारहित लहैं निजरङ्ग ।
ते परिगृह त्यागी हैं राम, वांछा रहित सदा सुखधाम ॥७८॥
ज्ञानिन विन भीतरकौ सङ्ग, और न त्यागि सकैं दुख अङ्ग ।
राग दोष मिथ्यात विभाव, ए भीतरके सङ्ग कहाव ॥७९॥
तजि भीतरके बाहिर तजै, सो बुध नवमी पड़िमा भजै ।
वस्त्र मात्र है परिगृह जहां, धातुमात्रकौ लेश न तहां ॥८०॥
नर्म पूंजणी धारैं धीर, पट कायनिकी टारैं पीर ।
जलभाजन राखैं शुचि काज, त्यागै धन धान्यादि समाज ॥८१॥
काठ तथा माटीकौ जोय, और पात्र राखै नहिं कोय ।
जाय बुलायो जीमै जोय, श्रावकके घर भोजन होय ॥८२॥
दशमी प्रतिमा धर बड़भाग, लौकिक वचनथकी नहिं राग ।
बिना जैनवानी कछु बोल, जो नहिं बोलै चित्त अडोल ॥८३॥
जगत काज सब ही दुखरूप, पापमूल परपञ्च स्वरूप ।
तातैं लौकिक वचन न कहै, जिनमारगकी सरधा गहै ॥८४॥
मौन गहै जगसेती सोय, सो दशमी पड़िमाधर होय ।
श्रुति अनुसारधर्मकी कथा, करै जिनेश्वर भाषी यथा ॥८५॥

जगतकाजकौ नहिं उपदेश, ध्यावैं धीरज धारि जिनेश।
बोलैं अमृत वानी वीर, पट कायनिकी टारैं पीर ॥८६॥
तजैं शुभाशुभ जगके काम, भयौ कामना रहित अकाम।
जो नर करैं शुभाशुभ काज, ते नहिं लहैं देश जिनराज ॥८७॥
रागद्वेष कलहके धाम, दीसैं सकल जगतके काम।
जगतरीतिमैं जे नर धसा, सो नहिं पावैं उत्तम दसा ॥८८॥
दशमी पड़िमा धारक संत, ज्ञानी ध्यानी अति मतिवंत।
गिनैं रतन पाहन सम जेह, त्रण कंचन सम जानैं तेह ॥८९॥
शत्रु मित्र सम राजा रङ्क, तुल्य गिनैं मनमें नहिं संक।
बांधव पुत्र कुटुम्ब धनादि, तिनकूं भूलि गये गनि वादि ॥९०॥
जानैं सकल जीव समरूप, गई विपमता भागि विरूप।
पर घर भोजन करैं सुजान, श्रावककुल जो किरियावान ॥९१॥
अल्प अहार तहांलैं धीर, नहिं चिन्ता धारैं वर वीर।
कोमल पीछी कमंडल एक, बिना धातुको परम विवेक ॥९२॥
इह कोपीन कणगती लया, छह हरता इक वस्त्र हु भया।
इक तह एक पाटकौ जोय, यही रीति दशमीकी होय ॥९३॥
जिन शासनको है अभ्यास, आगम अध्यातम अध्यास।
अब सुनि एका दशमी धार, सबमें उतकिष्टे निरधार ॥९४॥
वनवासी निरदोष अहार, कृतकारित अनुमोदन कार।
मनवच काय शुद्ध अविकार, सो एकादश पडिमा धार ॥९५॥
ताके दोय भेद हैं भया, क्षुल्लक ऐलिक श्रावक लया।
क्षुल्लक खण्डित कपड़ा धरैं, अरु कमंडल पीछी आदरैं ॥९६॥

इक कोपीन कणगती गहै, और कछू नहिं परिगृह चहै।
जिनशासनको दासा होय, क्षुल्लक ब्रह्मचार है सोय ॥९७॥
ऐलि धरैं कोपीन हि मात्र, अर इक शौचतनूं है पात्र।
कोमल पीछी दया निमित्त, जिनवानीकौ पाठ पवित्त ॥९८॥
पञ्च घरनिमें एक घरेहिं, भोजन मुनिकी भांति करेहिं।
ये है चिदानन्दमैं लीन, धर्मध्यानके पात्र प्रवीन ॥९९॥
क्षुल्लक जीमैं पात्र मंझार, ऐलि करै करपात्र अहार।
मुनिवर ऊभा लेय अहार, ऐलि अर्यका बैठा सार ॥१००॥
क्षुल्लक कतरावैं निज केश, ऐलि करैं शिरलोंच अशेष।
पहली पड़िमा आदि जु लेय, क्षुल्लकलों व्रत सवकूं देय ॥१॥
श्रीगुरु तीन वर्ण बिन कदे, नहिं मुनि ऐलितनैं व्रत दे।
पहलीसों छट्ठीलों जेहि, जघन्य श्रावक जानों तेहि ॥२॥
सप्तमि अष्टमि नवमी धार, मध्य सरावक हैं अविकार।
दशमी एकादशमी वन्त, उतकिष्टे भाषैं भगवन्त ॥३॥
तिनहूमैं ऐलि जु निरधार, ऐलिथकी मुनि बड़े विचार।
मुनिगणमैं गणधर हैं बड़े, ते जिनवरके सनमुख खड़े ॥४॥
जिनपति शुद्धरूप हैं भया, सिद्ध परैं नहिं दूजौ लया।
सिद्ध मनुज बिन और न होय, चहुंगतिमैं नहि नरसम कोय ॥५॥
नरमैं सम्यकदृष्टी नरा, तिनतैं वर श्रावक व्रत धरा।
षोड़स स्वर्गलोकलों जाहि, अनुक्रम मोक्षपुरी पहुंचाहिं ॥६॥
पंचमठाणें ग्यारा भेद, धारैं तेहि करैं अघछेद।
इह श्रावककी रीति जु कही, निकट भव्य जीवनिनें गही ॥७॥

ऊपरि ऊपरि चढ़ते भाव, विकरतभाव अधिक ठहराव।
नींव होय मन्दिरके यथा, सर्व व्रतनिके सम्यक तथा ॥८॥

दान वर्णन

दोहा—प्रतिमा ग्याराकौ कथन, जिन आज्ञा परवान।
परिपूरण कीनूं भया अब सुनि दान बखान ॥९॥
कियौ दान वरनन प्रथम, अतिथिविभाग जु माहिं।
अबहू दान प्रवन्ध कछु कहिहौं दूषण नाहिं ॥१०॥

(मनोहर छन्द)

ऐ मूढ़ अचेतो कछु इक चेतों, आखिर जगमें मरना है।
धन रह ही याहीं संग न जाहीं, तातैं दान सु करना है ॥११॥
बन दान न सिद्धि ह्वै अघवृद्धी, दुरगति दुख अनुसरना है।
करपणता धारो शठमति भारी, तिनहि न सुभगति वरना है ।१२।
यामैं, नहिं संसा नृप श्रेयंसा, कियउ दान दुख हरना है।
सो ऋषभ प्रतापें त्याग त्रितापे, पायौ धाम अमरना है ॥१३॥
श्रीषेण सुराजा दान प्रभावा, गहि जिनशासन सरना है।
लहि सुख बहु भांती ह्वै जिन शांती, पायो वर्ण अवर्णा है ।१४।
इक अकृत पुण्या किहउ सुपुण्या, लहिउ तुरत जिय मरना है।
ह्वै धन्यकुमारो चारित धारा, सरवारथ सिधि धरना है ॥१५॥
सूकर अर नाहर नकुलर बानर, नमि चारन मुनि चरना है।
करि दान प्रशंसा लहि शुभ वंशा, हरै जनम जर मरना है ॥१६॥

दोहा—वज्रजघ अर श्रीमती, दानतनें परभाव।
नर सुर सुख लहि उत्तमा, भये जगतकी नाव ॥१७॥
वज्रजंघ आदीश्वरा, भए जगतके ईश।
भये दानपति श्रीमती, कुलकर माहिं अधीश ॥१८॥
अन्नदान मुनिराजकों, देत हुते श्रीराम।
करि अनुमोदन गीध इक, पंछी अति अभिराम ॥१९॥
भयौ धर्मथी अणुव्रती, कियौ रामकौ संग।
राममुखै जिन नाम सुनि, लह्यो स्वर्ग अतिरंग ॥२०॥
अनुक्रम पहुंचैगो भया, राम सुरग वह जीव।
धारैगौ निजभाव सहु, तजिकैं भाव अजीव ॥२१॥
दानकारका अमित ही, सीझे भवथी भ्रात।
बहुरि दान अनुमोदका, कौलग नाम गिनात ॥२२॥
पात्रदान सम दान अर, करुणादान बखान।
सकल दान अन्तिमो, जिन आज्ञा परवान ॥२३॥
आपथकी गुण अधिक जो, ताहि चतुर विधि दान।
देवो है अति भक्ति करि पात्रदान सो जान ॥२४॥
जो पुनि सम गुन आपतैं, ताकों दैनों दान।
सो समदान कहै बुधा, करिकैं बहु सनमान ॥२५॥
दुखी देखि करुणा करे, देवै विविध प्रकार।
सो है करुणादान शुभ, भाषैं मुनिगणधार ॥२६॥
सकल त्यागि ऋषिव्रत धरै, अथवा अनशन लेइ।
सो है सकल प्रदानवर, जाकरि भव उतरेइ ॥२७॥

दान अनेक प्रकारके, तिनमैं मुखियाचार।
भोजन औषधि शास्त्र अर, अभैदान अविकार ॥२८॥
तिनकौ वर्णन प्रथम ही अतिथि विभाग मंझार।
कियौ अबै पुनरुक्तके, कारण नहिं विस्तार ॥२९॥

सप्तक्षेत्र वर्णन

जो करवावै जिनभवन, धन खरचै अधिकाय।
सो सुर नर सुख पायकै, लहै धाम जिनराय ॥३०॥
जो करवावै विधिथकी, जिनप्रतिमा बुधिमन्त।
मन्दिरमैं थपुरावई, सो सुख लहै अनन्त ॥३१॥
जव समान जिनराजको, प्रतिमा जो पधराय।
किंदरीसय वह देहरा, सोहू धन्य कहाय ॥३२॥
शिखर बंध करवावई, जिन चत्यालय कोय।
प्रतिमा उच्च करावई, पावै शिवपुर सोइ ॥३३॥
जल चंदन अक्षत पहुप, अरु नैवेद्य सुदीप।
धूप फलनि निज पूजई, सो ह्वै जग अवनीप ॥३४॥
जो देवलि करि विधि थकी, करै प्रतिष्ठा धीर।
सुर नर पतिके मोह लहि, सो उतरै भवनीर ॥३५॥
जो जिन तीरथकी महा, यात्रा करै सुजान।
सफल जनम ताही तनों, भाषैं पुरुष प्रधान ॥३६॥
चउ अनयोगमई महा, द्वादशांग अविकार।
सो जिनवाणी है भया, करै जगतथी पार ॥३७॥

ताके पुस्तक बोधकर, लिखै लिखावै शुद्ध ।
धन खरचै या वस्तुमें, सो होवै प्रतिबुद्ध ॥३८॥
ग्रन्थनिकूं मूड़े करै, करवावै धरि चित्त ।
भले भले वस्त्रनि विषै, राखै महा पवित्र ॥३९॥
जीरण ग्रन्थनिके महा जतन करै बुधिवान ।
ज्ञान दान देवै सदा सो पावै निरवान ॥४०॥
जीरण जिनमंदिर तणी, मरमत जो मतिवान ।
करवावै अति भक्तिसों, सो सुख लहै निदान ॥४१॥
शिखर चढ़ावै देहुरा, धन खरचै या भांति ।
कलश धरै जिन मन्दिरां, पावै पूरण शांति ॥४२॥
छत्र चमर घण्टादिका, बहु उपकरणां कोय ।
पधरावै चैत्यालये, पावै शिवपुर सोय ॥४३॥
टीप करावे द्रव्य दे धुवलावै जिनगेह ।
धुजा चढ़ावै देव लों, पावै धाम विदेह ॥४४॥
जो जिन मन्दिर कारनें धरती देय सु वीर ।
सो पावै अष्टम धरा, मोक्ष काम गम्भीर ॥४५॥
चउविधि संघनिकी भया, मनवच तनकरि भक्ति ।
करै हरै पीरा सबै सो पावै निज शक्ति ॥४६॥
सप्त क्षेत्र ये धर्मके, कहे जिनागम रूप ।
इनमैं धन खरचै बुधा, पावै वित्त अनूप ॥४७॥

अथ वचनिका ।

प्रतिमा करावैं, देवल करावै, पूजा तथा प्रतिष्ठा करै. जिन

तीरथकी यात्रा करै, शास्त्र लिखावै, चउविधि संघकी भक्ति करै ए सप्त क्षेत्र जानि। यहाँ कोई प्रश्न करै, प्रतिमाजी अचेतन छै, निग्रह अनुग्रह करवा समर्थ नाहीं, सो प्रतिमाका सेवन थकी स्वर्गमुक्ति फलप्राप्ति कैसी भाँति होय? ताका समाधान। प्रतिमाजी शांत स्वरूपने धार्या छै, ध्यानकी रीतिने दिखावे छै। दृढ़ आसन, नासाग्रदृष्टी, नगन, निराभर्ण, निर्विकार जिसौ भगवानकौ साक्षात स्वरूप छै तिस्यौ प्रतिमाजीने देख्यां यादि आवै छै। परिणाम ऐसे निर्मल होइ छै। अर श्रीप्रतिमाजीने सांगोपांग अपना चित्तमें ध्यावै तौ वीतराग भावनै पावै, यथा स्त्रीकी मूरति चित्रामकी, पाषाणकी कापठादिककी देखि विकार भाव उपजै छै, तथा वीतरागकी प्रतिमाका दर्शनथकी ध्यानथकी निर्विकार चित्त होइछै। अर आन देवकी मूरति रागी द्वेषी छै। उन्मादने धारै छै। सो वाका दरशन ध्यान करि राग दोष उन्माद बढ़ै छै। तीसौं आराधन जोग्य, दरसन जोग्य जिनप्रतिमा हीं छै। जीवांने भुक्ति मुक्तिदाताछै। यथा कलपवृक्ष, चिन्तामणि औषधि, मन्त्रादिक सर्व अचेतन छै तणि फलदाता छै। तथा भगवतकी प्रतिमा अचेतन छै, परन्तु फलदाता छै। ज्ञानी तो एक शांतभावका अभिलाषी छै। सो शान्तभावने जिनप्रतिमा मूर्तवन्त दिखावै छै। तीसूं ध्यान्नाने अर जगतका प्राणी संसारीक भोग चावै छै। सो जिनप्रतिमाका पूजनथकी सर्व प्राप्ति होय छै। ऐसो जानि, हित मानि, संसै भानि जिनप्रतिमाकी सेवा जोग्य छै।

कवित्त—श्रीजिनदेवतनी अरचा, अर साधु दिगम्बरकी अतिसेव।
श्रीजिनसूत्र सुनै गुरु सन्मुख, त्यागैं कुगुरु कुधर्म कुदेव ॥४८॥
धारैं दानशील तप उत्तम, ध्यावैं आतमभाव अछेव।
सो सब जीव लखै आपन सम, जाके सहज दयाकी टेव ॥४९॥
दानतनी विधि हैं जु अनन्त, सबै महिं मुख्य किमिच्छिक दाना।
ताके अर्थ सुनूं मनवांछित, दान करैं भवि सत्र प्रवाना ॥५०॥
तीरथकारक चक्र जु धारक, देहि सकैं इह दान निधाना।
और सबै निज शक्तिप्रमाण, करैं शुभ दान महा मतिवाना ॥५१॥
सोरठा—कोऊ कुबुद्धा क्रूर, चितवैं चितमें इह भया।
लहिहौं धन अतिपूर, तब करिहूँ दानहि विधी ॥५२॥
अब तो धन कछू नाहिं, पास हमारे दानकों।
किस विधि दान कराहिं, इह मनमैं धरि कृपण ह्वै ॥५३॥
यो न विचारै मूढ़, शक्ति प्रमावैं त्याग है।
होय धर्म आरूढ़, करैं दान जिनवैन सुनि ॥५४॥
कछु हू नाहि जुरै जु, दान विना धृग जनम है ॥५५॥
रोटो एकहु नाहिं तोहू रोटी आध ही।
जिनमारगके माहिं, दान विना भोजन नहीं ॥५६॥
एक ग्रास ही मात्र, देवै अतिहि अशक्त जो।
अर्ध ग्रास ही मात्र, देवै, परि नहि कृपण ह्वै ॥५७॥
गेह मसान समान, भाषै किरपणको श्रुति।
मृतक समान बखान, जीवत ही कृपणा नरा ॥५८॥
जानो गृद्ध समान, ताके सुत दारादिका।

जो नहिं करै सुदान, ताकौ धन आमिष समा ॥५९॥
जैसे आमिष खाय, गिरध मसाणा मृतककौ ।
तैसे धन विनशांहि, कृपणतनों सुतदारका ॥६०॥
सबकों देनौ दान, नाकारौ नहिं कोइसूं ।
करुणभाव प्रधान, नाकारो नही हि कोइस ॥६१॥
सब ही प्राणिनकों जु, अन्न वस्त्र जल औषधी ।
सूखे तृण विधिसो जु, देनैं तिरजंचानिकों ॥६२॥
गुनी देखि अति भक्ति, भावथकी देनौ महा ।
दान भक्ति अरु मुक्ति, कारण मूल कहै गुरू ॥६३॥
पर परणतिकौ त्यागता, सम आन दान कोउ ।
देहादिककौ राग त्यागै, ते दाता बड़े ॥६४॥
कह्यो दान परभाव, अब सुनि जलगालण विधी ।
छांड़ौ मुगध स्वभाव, जलगालण विधि आदरौ ॥६५॥

जलगालण विधि

अडिल्ल छन्द—अब जल गालन रीति सुनौ बुध कान दे ।
जीव असंखिनीकौ हि प्राणकौ दान दे ॥
जो जल बरतै छांणि सोहि किरिया धनी ।
जलगालणकी रीति धर्ममैं मुख भनी ॥६६॥
नूतन गाढ़ौ वस्त्र गुड़ी बिनु जौ भया ।
ताकौ गलनौ करै चित्त धरिकै दया ॥
डेढ़ हाथ लम्बो जु हाथ चोरो गहै ।
ताहि दुंपड़तो करै छांणि जल सुख लहै ॥६७॥

वस्त्र पुरानो अवर रङ्गकौ नांतिनां।
राखै तिन तैं ज्ञानवत्तको पांतिनां॥
छाणन एक हु बुन्द महीपरि जो परैं।
भाषैं श्रीगुरुदेव जीव अगणित मरैं॥६८॥
वरतैं मूरख लोग अगाल्यौ नीर जे।
तिनकों केतौ पाप सुनो नर धीर जे॥
असी वरसलों पाप करैं धीवर महा।
अवर पारधी भील वागुरादिक लहा॥६९॥
तेतो पाप लहै जु एक ही वार जे।
अणछाण्यूं वरतैंहि वारि तनधार जे॥
ऐसो जानि कदापि अगाल्यौ तोय जी।
वरतौ मति ता माहिं महा अघ होय जी॥७०॥
मकरीके मुखथकी तन्तु निकसैं जिसौ।
अति सूक्षम जो वीर नीर कृमि है तिसौ॥
तामैं जीव असंखि उड़ै ह्वै भ्रमर ही।
जम्बू द्वीप न माय जिनेश्वर यों कही॥७१॥
शुद्ध नातणे छांणि पाण जलकों करै।
छाण्यां जलथी धोय नांतणो जो धरै॥
जतनथकी मतिवन्त जिवाण्यूं जलविषै।
पहुंचावैं सो धन्य श्रुतिविषैं यूं लिखैं॥७२॥
जा निवाणकौ होय नीर ताही महै।
पधरावैं बुधिवान परम गुरु यों कहै॥

ओछे कपड़े नीर गाल्हही जे नरा।
पावैं ओछी योनि कहै मुनि श्रुतधरा ॥७३॥
जलगालण सम किरिया और नाहीं कही।
जलगालणमैं निपुण सोहि श्रावक सही॥
चउथी पड़िमा लगें लेइ काचौ जला।
आगे काचौ नांहिं प्राशुको निर्मला ॥७४॥
जाण्यूं काचौ नीर इकेन्द्री जानिये।
द्वै झटिका त्रसजीव रहित सो मानिये॥
प्रासुक मिरच लवङ्ग कपूरादिक मिला।
बहुरि कसेला आदि वस्तुतैं जौ मिला ॥७५॥
सो लेनो दोय पहर पहली ही जैनमैं।
आगे त्रस निपजन्त कह्यौ जिनवैनमें॥
तातौ भात उकालि वारि वसु पहर ही।
आगे जङ्गम जीवहु उपजैं सहज ही ॥७६॥

ज नर जिन आज्ञा नहिं जान, चितमैं आव सोई ठानैं।
भात उकाल अरैं महिं पानी, कछू इक उष्ण करैं मनमानी ।७७।
ताहि जुवरतैं अष्टहि पहरा, ते व्रत वर्जित अर श्रुति बहरा।
मरजादा माफिक नहिं सोई, ऐसें बरतौ भवि मति कोई ॥७८॥
जौ जन जैनधर्म प्रतिपाला, ता धरि जलकी है इह चाला।
काचौ प्राशुक तातौ नीरा, मरजादामैं वरतैं वीरा ॥७९॥
प्रथमहिं श्रावककौ आचारा, जलगालण विधि है निरधारा।
जे अणछाण्यौ पीवैं पाणी, ते धीवर वागुर सम जाणी ॥८०॥

बिन गाल्यो औरै नहि प्याजै, अभख न खाजै और न ख्वाजै।
तजि आलस अर सब परमादा, गालै जल चित धरि अलहादा।८१।
जल गालण नहिं चित्त करै, जो जल छाननमैं चित्त धरै जो।
अणछाण्यांकी बून्द हु धरती नाखै नहीं कदाचित वरती ॥८२॥
बून्द परैं तौ ले प्रायश्चित्ता, जाके घटमैं दया पवित्ता।
यह जलगालणकी विधि भाई, गुरु आज्ञा अनुसार बताई ॥८३॥

दोहा—अब सुनि रात्रि अहारका, दोष महा दुखदाय।
द्वै महुरत दिन जब रहै, तब तैं त्याग कराय ॥८४॥
दिवस महूरत द्वै चढैं, तबलौं अनसन होय।
निशि अहार परिहार सो, व्रत न दूजौ कोय ॥८५॥
निशि भोजनके त्यागतैं, पावै उत्तम लोक।
सुर नर विद्या धरनके, लहै महासुख थोक ॥८६॥
जे निशि भोजन कारका तेहि निशाचर जान।
पावै नित्य निगोदके, जनम महा दुखखानि ॥८७॥
निशि वासरकौ भेद नहि, खात तृप्ति नहिं होय।
सो काहे के मानवा, पशुहूतैं अधिकोय ॥८८॥
नाम निशाचर चारकौ, चोर समाना तेहि।
चरैं निशाकौं पापिया, हरैं धर्ममति जेहि ॥८९॥
बहुरि निशाचर नाम है, राक्षसकौ श्रुतिमाहि।
राक्षस सम जो नर कुधी, रात्रि अहार कराहिं ॥९०॥
दिन भोजन तजि रैनिमैं भोजन करैं विमूढ़।
ते उलूक सम जानिये, महापाप आरूढ़ ॥९१॥

मांस अहारा सारिखे, निशि भोजी मति हीन।
जनम जनम या पापतैं, लहैं कुगति दुखदीन ॥६२॥

नाराच छंद—उलूक काक औ, विलाव श्वान गर्दभादिका।
गहै कुजन्म पापिया, जु ग्राम शूकरादिका॥
कुछारछोवि माहिं, कीट होय रात्रि भोजका।
तजैं निशा अहारकों विमुक्ति पंथ खोजका॥६३॥
निशा महैं करैं अहार, ते हि मूढ़धी नरा।
लहैं अनेक दोपकूं, सुधर्महीन पामरा।
जु कीट माछरादिका, भखैं अहार माहिते।
महा अधर्म धारिके, जु नर्क माहिं जाहिंते॥६४॥

(छन्द चाल)

निशिमाहीं भोजन करहीं, ते पिंड अभखतै भरही।
भोजनमैं कीड़ा खाये, तातैं बुधि मूल नशाये॥६५॥
जो जूं का उदरैं जाये, तौ रोग जलोदर पाये।
मांखी भोजनमैं आवै, ततखिन सो वमन उपावै॥६६॥
मकरी आवै भोजनमैं, तौ कुष्ट रोग होय तनमैं।
कंटक अरु काठजु खंडा, फंसि है जा गले परचंडा॥६७॥
तौ कंठ विथा विस्तारै, इत्यादिक दोष निहारै।
भोजनमैं आवै बाला, सुर भग होय ततकाला॥६८॥
निशि भोजन करके जीवा, पावैं दुख कष्ट सदीवा।
होवैं अति ही जु विरूपा, मनुजा अति विकल कुरूपा।६९।

अति रोगी आयुस थोरा, ह्वै भागहीन निरजोरा ।
आदर रहिता सुख रहिता, अति ऊंच-नीचता सहिता ।।१००।
इक बात सुनो मनलाई, हथनापुर पुर है भाई ।
तामैं इक हूतौ विप्रा, मिथ्यामत धारक लिप्रा ।।१।।
रुद्रदत्त नाम है जाकौ, हिंसामारग मत ताकौ ।
सो रात्रि अहारी मूढ़ा, कुगुरनके मत आरूढ़ा ।।२।।
इक निशिकों भोंदू भाई, रोटीमैं चींटी खाई ।
बेंगनमैं मींडक खायौ, उत्तम कुल तिहं गिनशायौ ।।३।।
कालान्तर तजि निज प्राणा, सो घू घू भयौ अयाणा ।
फुनि मरि करि गयौ जु नर्का, पायौ अति दुख संपर्का ।४।
नीसरि नरकजुतैं कागा, वह भयौ पापपथ लागा ।
बहुरें नर्कजुके कष्टा पायौ जु सपष्टा ।।५।।
फुनि भयौ विडाल सु पापी, जीवनिकूं अति संतापी ।
सो गयौ नर्कमैं दुष्टा, हिंसा करिके वो पुष्टा ।।६।।
तहांतैं जु भयौ वह गृद्धा, फुनि गयौ नर्क अधवृद्धा ।
नर्कजुतैं नीसरि पापी, हूवौ पसु पाप प्रतापी ।।७।।
बहुरें जु गयौ शठ कुगती, घोर जु नर्कें अति विमती ।
नीसरिकै तिरजंच ह्वौ, बहु पाप करी पसु मूवौ ।।८।।
फुनि गयौ नर्कमें कुमती, नारकतैं अजगर अमती ।
अजगरतैं बहुरि नर्का, पायौ अति दुख संपर्का ।।६।।
नर्कजुतैं भयौ बघेरा, तहां किये पाप बहुतेरा ।
बहुरै नारकगति पाई, तहांतैं गोधा पशु जाई ।।१०।।

गोघातैं नर्क निवासा, नरकतैं मच्छ विभासा ।
सो मच्छ नरकमैं जायौ, नारकमैं बहु दुख पायौ ॥११॥
नारकतैं नीसरि सोई, बहुरी द्विजकुलमैं होई ।
लोमस प्रोहितकौ पुत्रा, सो धर्म कर्मके शत्रा ॥१२॥
जो महीदत्त है नामा, सातौं विसनजुसो कामा ।
नग्रजुतैं लह्यौ निकासा, मामाकै गयौ निरासा ॥१३॥
मामे हू राख्यौ नाहीं, तब काशीके वनमाहीं ।
मुनिवर भेटे निरग्रन्था, जे देहि मुकतिकौ पंथा ॥१४॥
ज्ञानी ध्यानी निजरत्ता, भवभोगशरीर विरत्ता ।
जानैं जनमांतर वातैं, जिनके जियमैं नहिं घातैं ॥१५॥
तिनकौं लखि द्विज शिरनायौ, सब पापकर्म विनशायौ ।
पूछी जनमांतर वार्ता, जा विधि पाई बहु घातां ॥१६॥
सो मुनिने सारी भाखी, कछु बातबीच नहिं राखी ।
निशि भोजन सम नहिं पापा, जाकरि पायौ दुखतापा ।१७।
सुनि करि मुनिवरके वैना, ब्राह्मण धार्यौ मत जैना ।
सम्यक्त अणुव्रत धारी, श्रावक हूवौ अविकारी ॥१८॥

दोहा—मात-पिता अति हित कियौ, दियौ भूप अति मान ।
पुन्य उदै लक्ष्मी अतुल, पाप किये बहु हान ॥१९॥

चौपाई ।

पूजा करै जपै अरहंत, महीदत्त हूवौ अति संत ।
जिन मंदिर जिनबिम्ब रचाय, करी प्रतिष्ठा पुण्य उपाय ॥२०॥

सिद्धक्षेत्र बंदै अधिकाय, जिन सिद्धान्त सुनैं अधिकाय।
केतो काल गयौ इह भांति, समैं पाय धारी उपशांति ॥२१॥
शुभ भावनितैं छाड़े प्रान, पायौ षोडश स्वर्ग विमान।
ऋद्धि महा अणिमादिक लई, आयु बीस द्वै सागर भई ॥२२॥
चयौ स्वर्गथी सो परवान, राजपुत्र हूवौ शुभ लान।
देश अवंती उत्तम बसै, नगर उजैणी अति ही लसै ॥२३॥
तहां नरपती पृथ्वीमल, जिनधर्मी सम्यक्ति अचल्ल।
प्रेमकारिणी रानी महा, ताके उदर जन्म सो लहा ॥२४॥
नाम सुधारस ताकौ भयौ, मात पिता अति आनन्द लयौ।
अनुक्रम वर्ष सातकौ जबै, विद्या पढ़ने सौंप्यौ तबै ॥२५॥
शस्त्र शास्त्रमैं बहु परवीण, भयौ अणुव्रती समकित लीन।
जोवनवंत भयौ सुकुमार, व्याह कियौ नहिं धर्म मम्हार ॥२६॥
एक दिवस बनक्रीड़ा गयौ, बड़तरु बिजुरीतैं क्षय भयौ।
ताकों लखि उपजौ बैराग, अनुप्रेक्षा चितई बड़ भाग ॥२७॥
चन्द्रकीर्ति मुनिके ढिग जाय, जिनदीक्षा लीनी शिरनाय।
अभ्यन्तर बाहिर चौबीस, ग्रन्थ तजैं मुनिकू नमि शीश ॥२८॥
पंच महाव्रत गुप्ति जु तीन, पंच समिति धारी परवीन।
सुक्ल ध्यानकरि कर्म विनाशि, केवल पायौ अति सुखराशि ।२९।
बहुत भव्य उपदेशे जिनैं, आयुकर्म पूरण करि तिनैं।
शेष अघातियकौ करि नाश, पायौ मोक्ष पुरी सुखवास ॥३०॥
निशि भोजनतैं जे दुख लये, अर त्यागतैं सुख अनुभये।
तिनके फलकौ वर्णन करी, कथा अणथमी पूरण करी ॥३१॥

छप्पय—इक चंडाली सुरझि व्रत सेठनिपैं लीयौ।
मन वच तन दृढ़ होय त्यागि निशि भोजन कीयौ।
व्रततनों परभाव त्याग तन अंजित जाया।
वाही सेठनिके जु उदर उपजी वर काया।
गहि जैनधर्म धरि शीलव्रत पाप कर्म सबही दहा।
लहिसुरगलोक नरलोक सुख लोकशिखरकौ पथगहा।३२।
एक हुतौ जु शृगाल कर सुदरसन मुनिराया।
त्यागौ निशि खान पान जिनधर्म सुहाया॥
मरि करि ह्वो सेठ नाम प्रीतंकर जाकौ।
अद्भुत रूपनिधान धर्ममैं अति चित ताको॥
भयौ मुनीश्वर सब त्यागिकै, केवल लहि शिवपुर गयौ।
नहिं रात्रिभुक्ति परित्याग सम, और दूसरौव्रत लयौ।३३।
सोरठा—निशि भोजन करि जीव, हिंसक ह्वै चहुंगति भ्रमैं।
जे त्यागैं जु सदीव, निशि भोजनते शिव लहैं॥३४॥
अर्ध उमरि उपवास, माहीं बीते तिन तनी।
जे जन है जिनदास, निशि भोजन त्यागैं सुधी॥३५॥
दिवस नारिकौ त्याग, निशिकों भोजन त्यागई।
निशदिन जिनमत राग, सदा व्रतमूरति बुधा॥३६॥
एक मासमैं आत, पाख उपास फलैं फला।
जे निशि माहिं न खात, च्यारि अहारा धीधना॥३७॥
निसि भोजन सम दोष, भयौ न ह्वै है होयगौ।
महा पापकौ कोष, मद्य मांस आहार सम॥३८॥

त्यागें निशिकी खान, तिनें हमारी बन्दना।
देही अभय प्रदान, जीवगणनिकों ते नरा ॥३९॥
कौलग कहैं सुवीर, निशि भोजनके अवगुणा।
जानैं श्रीमहावीर, केवलज्ञान महंत सब ॥४०॥

रत्नत्रय वर्णन

सोरठा—अब सुनि दरसन ज्ञान, चरण मोक्षके मूल हैं।
रतनत्रय निज ध्यान, तिन विन मोक्ष न ह्वै भया ॥४१॥
सम्यकदर्शन सो हि, आतम रुचि श्रद्धा महा।
करनों निश्चय जो हि, अपने शुद्ध स्वभावकों ॥४२॥
निजकों जानपनो हि, सम्यकज्ञान कहैं जिना।
थिरता भाव घनो हि, सो सम्यकचारित्र है ॥४३॥

चौपाई।

प्रथमहि अखिल जतन करि भाई सम्यक दरसन चित्त धराई।
ताके होत सहस ही होई, सम्यकज्ञान चरन गुन दोई ॥४४॥
जीवाजीवादिक नव अर्था, तिनकी श्रद्धा विन सब व्यर्था।
है श्रद्धान रहित विपरीता, आतमरूप अनूप अजीता ॥४५॥
सकल वस्तु हैं उभय स्वरूपा, अस्ति-नास्तिरूपी जु निरूपा।
अनेकांतमय नित्य अनित्या, भगवतने भापे सहु सत्या ॥४६॥
तामै संसै नाहिं जु करनौ, सम्यक दरसन ही दिढ़ धरनौ।
या भवमैं विभवादि न चाहै, परभव भोगनिकं न उमाहै ॥४७॥

चक्री केशवादि जे पदई, इन्द्रादिक शुभ पदई गिनई।
कबहुं वांछै कछुहि न भोगा ते किहिये भगवतके लोगा ॥४८॥
जो एकान्तवाद करि दूषित, परमत गुण करि नाहिं जु भूषित।
ताहि न चाहै मन वन तन करि, ते दरसन धारी उरमैं धरि।४९।
क्षुधा तृषा अर उष्ण जु सीता, इनहिं आदि सुखभाव वितीता।
दुखकारणमैं नाहिं गिनाली, सो सम्यकदरशन गुणखानी ॥५०॥
लौकविषैं दहि मूढ़तभावा, श्रुति अनुसार लखै निरदावा।
जैनशास्त्र बिनु ओर जु ग्रन्था, शास्त्राभास गिनैं अघपन्था ॥५१॥
जैनसमय बिनु और जु समया, समयाभास गिनै सहु अदया।
बिनु जिनदेव और हैं जेते, लखै जु देवा भास सु ते ते ॥५२॥
श्रद्धानी सो तत्वविज्ञानी, धरै सुदर्शन आतमध्यानी।
करै धर्मको जो बढ़वारी, सदा सु मार्दव आर्जवधारी ॥५३॥
पर औगुन ढाकै बुधिवंता, सो सम्यकदरशनधर संता।
काम क्रोध मद आदि विकारा, तिनकरि भये विकलमति धारा।
न्यायमार्गतें विचल्यौ चाहै, मिथ्यामारगकौ जु उमाहै।
तिनको ज्ञानी थिरचित कारै, युक्तथकी भ्रमभाव निवारै ॥५५॥
आप सुथिर औरैं थिर कारै, सो सम्यकदरशन गुण धारै।
दयाधर्ममैं जो हि निरन्तर, करै भावना उर अभ्यन्तर ॥५६॥
शिवसुख लक्ष्मी कारण धर्मो, जिनभासित भवनाशित पर्मो।
तासौं प्रीति धरै अधिकेरी, अर जिनधर्मीनसूं बहुतेरी ॥५७॥
प्रीति करै सो दर्शनधारी, पावै लोकशिखर अविकारी।
यथा तुरतके बछरा ऊपरि, गो हित राखं मन वच तन करि ॥५८॥

तथा धर्म धर्मनिसों प्रीती, जाके ताने शठता जीती ।
आतम निर्मल करणों भाई, अतिसयरूप महा सुखदाई ॥५६॥
दर्शन ज्ञान चरण सेवन करि, केवल उतपति करनौ भ्रम हरि ।
सो सम्यक परभाव न होई, परभावनको लेश न कोई ॥६०॥
दान तपो जिनपूजा करिकै, विद्या अतिशय आदि जु धरिकै ।
जैनधर्मकी महिमा कारै, सो सम्यकदरशन गुण धारै ॥६१॥
ए दरशनके अष्ट जु अंगा, जे धारै उर माहिं अभङ्गा ।
ते सम्यक्ती कहिये वीरा, जिन आज्ञा पालन ते धीरा ॥६२॥
सेवनीय है सम्यकज्ञानी, माया मिथ्या ममता भानी ।
सदा आतमरस पीवैं धन्या, ते ज्ञानी कहिये नहि अन्या ॥६३॥
यद्यपि दरशन ज्ञान न भिन्ना, एकरूप है सदा अभिन्ना ।
सहभावी ए दोऊ भाई, तौ पनि किंचित भेद धराई ॥६४॥
भिन्न, भिन्न आराधन तिनका, ज्ञानवंतके होई जिनका ।
एक चेतनाके द्वै भावा, दरशन ज्ञान महा सुप्रभावा ॥६५॥
दरसन है सामान्य स्वरूपा, ज्ञान विवेष स्वरूप विरूपा ।
सरसन कारन ज्ञान सु कार्या, ए दोऊ न लहैं हि अनार्या ॥६६॥
निराकार दर्शन उपयोगा, ज्ञान धरै साकार नियोगा ।
कोऊ प्रश्न करै यह भाई, एककाल उत्पत्ति बताई ॥६७॥
दरसन ज्ञान दुहुनको तातैं, कारन कारिज होइ न तातैं ।
ताकौ समाधान गुरु भाषैं, जे धारैं ते निजरस चाखैं ॥६८॥
जैसे दीपक अर परकाशा, एक काल दुहुँको प्रतिभासा ।
पर दीपक है कारनरूपा, कारिज रूप प्रकाशन रूपा ॥६९॥

तैसैं दरशन ज्ञान अनूपा, एक काल उपजै निजरूपा।
दरसन कारनरूपी कहिये, कारिजरूपी ज्ञान सु गहिये ॥७०॥
विद्यमान हैं तत्त्व सवैं ही, अनेकांततारूप फवैं ही।
तिनको जानपनौ जो भाई, संशय विभ्रम मोह नशाई ॥७१॥
जो विपरीत रहित निजरूपा, आतम भाव अनूप निरूपा।
सो है सम्यकज्ञान महंता, निजको जानपनों विलसन्ता ॥७२॥
अष्ट अंगकरि शोभित सोई, सम्यकज्ञान सिद्धकर होई।
ते धारौ भवि आठों शुद्धा, जिनवाणी अनुसार प्रवृद्धा ॥७३॥
शब्द शुद्धता पहलों अङ्गा, शुद्ध पाठ पढ़ई जु अभङ्गा।
अर्थ शुद्धता अङ्ग द्वितीया, करै शुद्धअर्थ जु विधि लीया ॥७४॥
शब्द अर्थ दुहुकी निर्मलता, मन वच तन काया निहचलता।
सो है तीजा अङ्ग विशुद्धा, सम्यक्ता धारै प्रतिबुद्धा ॥७५॥
कालाध्यायन चतुर्थम अङ्गा, ताकौ भेद सुनौ अतिरङ्गा।
जा विरियां जो पाठ उचित्ता, सोही पाठ करै जु पवित्ता ॥७६॥
विनय अङ्ग हैं पंचम भाई, विनयरूप रहिबौ सुखदाई।
सो उपधान है छट्ठम अङ्गा, योग्य क्रिया करिवौ जु अभंगा ॥७७॥
जिन भाषितकों अंगी करनौ, सो उपाधान अंगकौ धरनौ।
सत्तम है बहुमान विख्याता, ताकौ अर्थ सुनूं तजि घाता ॥७८॥
बहु सतकार सु आदर करिकै, जिन आज्ञा पालै उर धरिकै।
अष्टम अंग अनिन्हव धारै, ते अष्टम भूमी जु निहारै ॥७९॥
जो गुरुके ढिग तत्त्वविज्ञाना, पायो अद्भुत रूप निधाना।
तों गुरुकौ नहिं नाम छिपावै, बार बार महागुण ही गावै ॥८०॥

सो कहिये जु अनिन्हव अंगा, ज्ञानस्वरूप अनूप अभंगा ।
सम्यक ज्ञान तपूं आराधन, ज्ञानिनकों करनं शिवसाधन ॥८१॥
दरशन मोह रहित जो ज्ञानी, तत्त्वभावना दृढ़ ठहरानी ।
जेहि जथारथ जानैं भावा, ते चारित्र धरै निरदावा ॥८२॥
विना ज्ञान नहिं चारित सोहैं, विना ज्ञान मनमथ मन मौहै ।
तातैं ज्ञान पाछे जु चरित्रा, भाख्यौ जिनवर परम पवित्रा ॥८३॥
सर्व पापमारग परिहारा, सकल कषायरहित अविकारा ।
निर्मल उदासीनता रूपा, आतमभाव सु चरित अनूपा ॥८४॥
सो चारित्र दोय विधि भाई, मुनिश्रावक व्रत प्रगट कराई ।
मुनिको चारित सर्व जु त्यागा, पापरीरिके पंथ न लागा ॥८५॥
आके तेरह भेद वखानै, जिनवानी अनुसार प्रवानैं ।
पंच महाव्रत पंच जु समिति, तीन गुपतिके धारक सुजती ॥८६॥
चउविधि जंगम पंचम थावर, निश्चयनय करि सव हि वरावर ।
तिन सर्वनिकी रक्षा करिवौ, सो पहलो सु महाव्रत धरिवौ ॥८७॥
सन्तत सत्य वचनकौ कहिवो, अथवा मौनव्रतकों गहिवो ।
मृषावाद वोलै नहिं जोई, दूजौ महाव्रत्त है वह सोई ॥८८॥
कौड़ी आदि रतन परजंता, घटि अघटित तसु भेद अनन्ता ।
दत्त अदत्य न परसै जाई, तीजो महाव्रत है सुखदाई ॥८९॥
पशु पंछी नर दानव देवा, भव त्रासौ रमनारत मेवा ।
तजै निरन्तर मदन विकारा, सो चौथो जु महाव्रत भारा ॥९०॥
द्विविधि परिग्र त्यागै भाई, अन्तर बाहिर संग न काई ।
नगन दिगम्बर मुद्रा धारा, सो हि महाव्रत पंचम सारा ॥९१॥

ईर्यासमिति ऋषी जो चालें, भाषा समिति कुभाषा टालै ।
भाखै आहार आदोए मुनीशा, ताहि एषणा कहै अधीशा ॥९२॥
है अदाननिक्षेपा सोई, लेहि निरखि शास्त्रादिक जोई ।
अर पश्ठिवणा पंचम समिती, निरखि भूमि डारें मल सुजती ।९३।
मनोगुप्ति कहिये मन रोधा, वचनगुप्ति जो वचन निरोधा ।
कायगुप्ति काया वस करिवौ, ए तेरह विधि चारित धरिवौ ॥९४॥
एकदेश गृहपति चारित्रा, द्वादश व्रतरूपी हि पवित्रा ।
जो पहली भाख्यो अब तातैं, कह्यो नहीं श्रावकव्रत तातैं ॥९५॥
इह रतनत्रय मुनिके पूरा होवें अष्टकर्म दल चूरा ।
श्रावकके नहिं पूरण होई, धरैं न्यूनतारूप जु सोई ॥९६॥
इह रतनत्रय करि शिव लेवै, चहुंगतिकों भवि पानी देवे ।
या करि सीझे अरु सीझंगे, यह लहि परमैं नहिं रीझैंगे ॥९७॥
या करि इन्द्रादिक पद होवै सो दूषण शुभकों बुध जोवै ।
इह तौ केवल मुक्ति प्रदाई, वंधनरूप होय नहिं भाई ॥९८॥
वंध विदारन मुक्ति सुकारण, इह रतनत्रय जगत उधारण ।
रतनत्रय सम और न दूजौ, इह रतनत्रय त्रिभुवन पूजौ ॥९९॥
रतनत्रय बिनु मोक्ष न होई, कोटि उपाय करै जो कोई ।
नमस्कार या रत्नत्रयकों, जो दै परमभाव अक्षयकों ॥१००॥
रतनत्रयकी महिमा पूरन, जानि सकै वसु कर्म विचूरन ।
मुनिवर हू पूरण नहि जानैं, जिन आज्ञा अनुसार प्रवानैं ।१०१।
सहस जीभ करि वरणन करई, तिनहुं पै नहिं जाय वरणई ।
हमसे अलपमती कह्यौ कैसे, भाषै बुधजन धारहु ऐसे ॥१०२॥

त्रेपन किरियाको यह मूला, रतनत्रय चेतन अनुकूला ।
जिन धार्यो तिन आपौ तार्यो याकरि वहुतनि कारिज सार्यौ ।
धन्नि घरी वह ह्वैगी भाई, रतनत्रयसों जीव मिलाई ।
पहुंचैगो शिवपुर अविनाशी, होवें वे अति आनन्द राशी ।१०४।
सव ग्रन्थनिमैं त्रेपन किरिया, इन करि इनविन भववन फिरिया ।
जो ए त्रेपन किरिया धारै, सो भवि अपना कारिज सारै ।१०५।
सुरग मुकति दाता ए किरिया, जिनवानी सुनि जिनि ए धरिया ।
तिन पाई निज परणति शुद्धा, ज्ञान स्वरूपा अति प्रतिवुद्धा ।
है अनादि सिद्धा ए सर्वा, ए किरिया धरिवौ तजि गर्वा ।
ठौर ठौर इनकौ जस भाई, ए किरिया गावै जिनराई ॥१०७॥
गणधर गावैं मुनिवर गावैं, देव भापमैं शवद सुनावैं ।
पंचमकाल मांहि सुरभापा, विरला समझै जिनमत साखा ।१०८।
तातैं यह नरभापा कीनी, सुरभापा अनुसारे लीनी ।
जौ नरनारि पढ़ै मनलाई, तौ सुख पावैं अति अधिकाई ।१०६।
संवत सत्रासै पच्याणव, भादव सुदि वारस तिथि जाणव ।
मंगलवार उदयपुर माहैं, पूरन कीनी संसय नाहैं ॥११०॥
आनन्द सुत जयसुतकौ मंत्री, जयकौ अनुचर जाहि कहै ।
सौ दौलत जिन दासनिदासा, जिनमारगकी शरण गहै ॥१११॥

॥ समाप्त ॥